Done

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : ११
अंक : १०१
मई २००१
विक्रम.सं. २०५८
ज्येष्ठ मास

हिन्दी
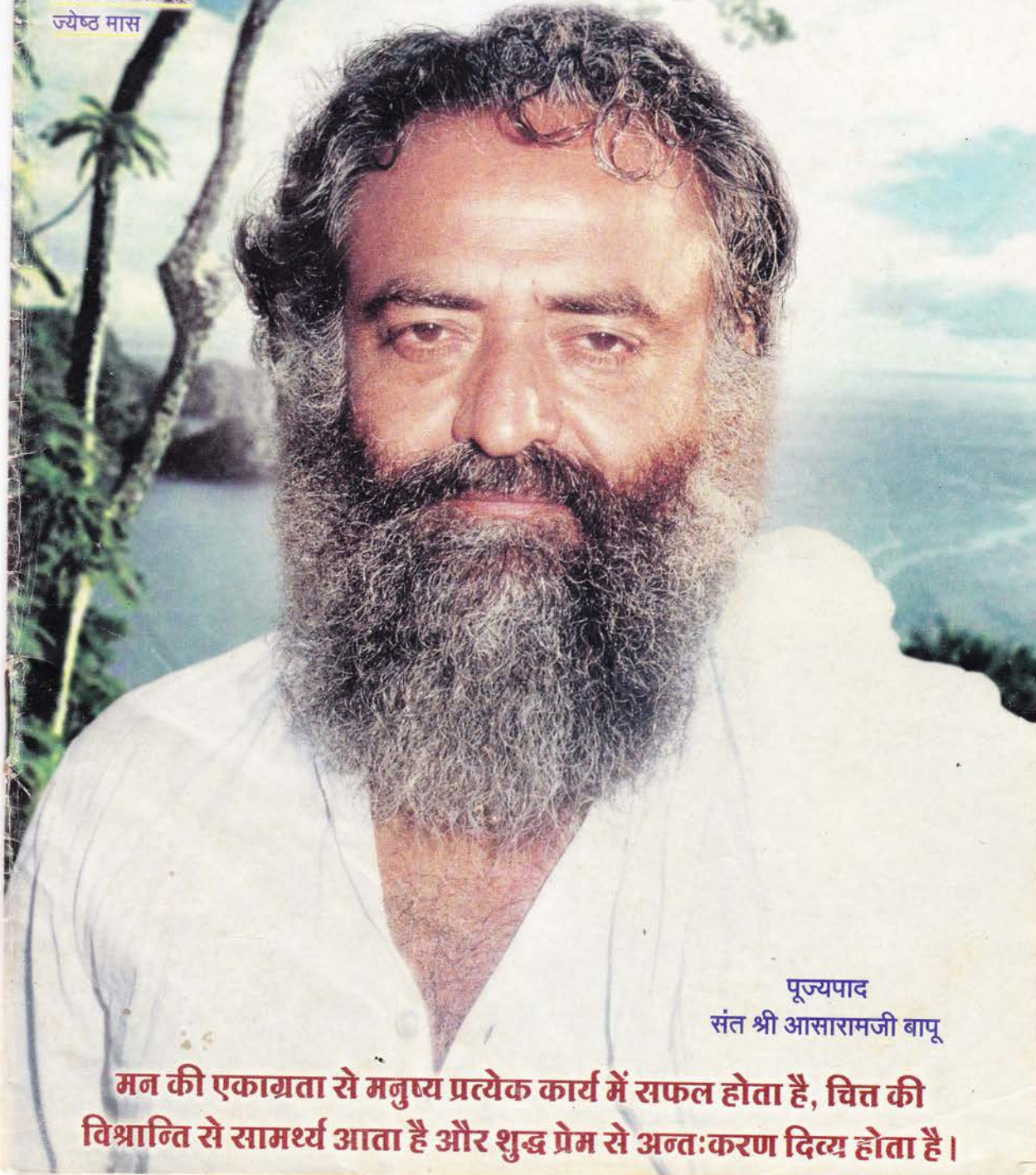
पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी बापू

मन की एकाग्रता से मनुष्य प्रत्येक कार्य में सफल होता है, चित्त की विश्रान्ति से सामर्थ्य आता है और शुद्ध प्रेम से अन्तःकरण दिव्य होता है।

आध्यात्मिक क्रान्ति का शंखनाद 'ऋषि प्रसाद'...
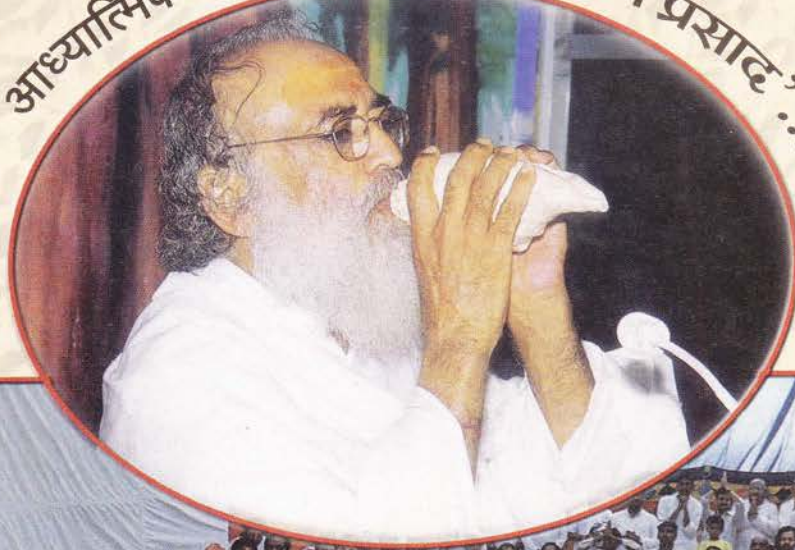
अपने सद्गुरुदेव की ज्ञान-गंगा को जन-जन तक पहुँचाने का भगीरथ कार्य करके पूज्य बापूजी की नूरानी निगाहों का प्रसाद पाकर कृतार्थ होते हुए चौदह स्वर्णपदक विजेता।

हम 'ऋषि प्रसाद' के सेवाधारी, रखेंगे अभियान जारी। जन्मों के संचित पुण्य फले अब, बने गुरुकृपा के अधिकारी॥
'ऋषि प्रसाद' के अन्य पुरस्कृत सेवाधारी अपने गुरुदेव से दिशा निर्देश एवं आशीर्वाद प्राप्त करते हुए।

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : ११
अंक : १०१
९ मई २००१
ज्येष्ठ मास, विक्रम संवत् २०५८ (गुज. २०५७)

सम्पादक : क. रा. पटेल
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग
SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

ब्रह्मज्ञान की महिमा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥

'जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सब संशय ज्ञान के द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो संपूर्ण प्राणियों के हित में रत हैं और जिनका जीता हुआ मन निश्चलभाव से परमात्मा में स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।'

(गीता : ५.२५)

संसार स्वप्न जैसा है । जन्म से लेकर जीवनभर मजदूरी करो लेकिन कुछ हाथ नहीं लगता है, जैसे भूसी को छड़ने से कुछ हाथ नहीं लगता है । संसार की बातें करना भूसी छड़ना है । माया से पार होने की बातें करना धान छड़ना है और ब्रह्म-परमात्मा की बातें करना चावल छड़ना है । जो ब्रह्म-परमात्मा को पाये हुए हैं उनके लिये संसार एक खेलमात्र है ।

तुलसी पूर्व के पाप से हरिचर्चा न सुहाय ।
जैसे ज्वर के जोर से भूख विदा हो जाय ॥

जिनके पाप जोर करते हैं उनको हरि की चर्चा, ब्रह्म परमात्मा की चर्चा नहीं सुहाती है, उनके मन में तो माया के (भूसी छड़ने के) विचार घूमते हैं । जिनके सब पाप निवृत्त हो गये हैं वे माया में रहते हुए भी माया के विचारों से लेपायमान नहीं होते हैं । ज्ञान के द्वारा जिनके सब संशय निवृत्त हो गये हैं ऐसे पुण्यात्मा को अपने स्वरूप के विषय में कोई संशय नहीं रहता है ।

'जगत सत्य है या मिथ्या ? आत्मा सत्य है कि परमात्मा सत्य है ? आत्मा और परमात्मा भिन्न हैं कि अभिन्न हैं ? जीते-जी मुक्ति मिलती है कि मरने के बाद मिलती है ? जीव-ब्रह्म में भिन्नता है कि अभिन्नता ?' इस विषय में उनके संशय ज्ञान द्वारा निवृत्त हो जाते हैं । 'मैं जन्मने-मरनेवाला तुच्छ जीव नहीं हूँ किन्तु सर्वव्यापक ब्रह्म हूँ... मैं व्यक्ति विशेष परिच्छिन्न नहीं हूँ किन्तु अखंड ब्रह्माण्ड में व्यापक परब्रह्म हूँ...' इसमें उनको कोई संदेह नहीं होता है क्योंकि उन्होंने अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान पा लिया है ।

जो संपूर्ण प्राणियों के हित में रत रहते हैं, वे ज्ञानी महापुरुष हैं । हर प्राणी का अपना-अपना प्रारब्ध होता है, अपना-अपना स्वभाव होता है, अपनी-अपनी पकड़ होती है और अपनी-अपनी मान्यता होती है । ज्ञानी महापुरुष सबमें स्थित परमात्मा में विश्रांति पाते हैं । अतः अपने स्वरूप में विश्रांति पाये हुए ऐसे महात्मा को देखकर सब प्रसन्न होते हैं और उनको स्नेह करते हैं । पशु-पक्षियों पर भी यदि ज्ञानवान् की दृष्टि जाती है तो वे उनमें भी अपनी आत्मा को निहारते हैं । दूसरों में अपना आत्मस्वरूप निहारना यह भी उनका हित करने का बड़ा साधन है । जैसे 'एक्स-रे' मशीन अपनी जगह पर होते हुए भी हड्डियों तक की फोटो ले लेती है वैसे ही ज्ञानी महापुरुषों की ब्रह्मभावपूर्ण निगाहें हम पर पड़ती हैं तो हमारे लिये भी अपने स्वरूप तक पहुँचने का मार्ग सरल हो जाता है ।

शास्त्र में तो यहाँ तक कहा गया है कि लकड़ी-पत्थर इत्यादि जड़ वस्तुओं को यदि ज्ञानी छूते हैं या उन पर उनकी दृष्टि पड़ती है, स्पर्श मिलता है तो देर-सवेर उनका भी उद्धार हो जाता है तो चेतन जीवों का कल्याण हो जाये इसमें क्या आश्चर्य है ? इसीलिये ज्ञानी **'सर्वभूतहिते रताः'** कहे गये हैं ।

'सर्वभूतहिते रताः' का अर्थ यह नहीं है कि सब प्राणी अपना जैसा हित चाहते हैं वैसा हित । बच्चा अपनी बुद्धि के अनुसार अपना हित चाहता है, कामी अपनी बुद्धि के अनुसार अपना हित चाहता

है, लोभी अपनी बुद्धि के अनुसार अपना हित चाहता है, अहंकारी अपनी बुद्धि के अनुसार अपना हित चाहता है। वास्तव में उनका उसमें हित नहीं है लेकिन ज्ञानी उनमें ब्रह्मदृष्टि की निगाह डालते हैं और उसीमें सबका हित निहित है। इसी दृष्टि से कहा गया है कि ज्ञानी महापुरुष संपूर्ण प्राणियों के हित में रत रहते हैं।

आत्मज्ञान के पश्चात् ज्ञानी महापुरुष का शेष जीवन लोगों को आत्मज्ञान पाने के प्रति जागृत करने में बीतता है। यह आत्म-जागृति का कार्य भी उनका स्वनिर्मित विनोद है। जो विनोदमय कार्य होता है उसमें थकान नहीं लगती है और उसमें कर्तापन का भाव भी नहीं होता है। जो थोपा जाता है वह थकान लाता है और जो किया जाता है वह कर्तापन लाता है लेकिन जो विनोद से होता है उसमें न कर्तापन होता है न थकान।

विनोदमात्र व्यवहार जेनो ब्रह्मनिष्ठ प्रमाण।

ऐसे महापुरुषों का प्रत्येक व्यवहार विनोदमात्र होता है। उनका राज्य करना भी विनोदमात्र और भिक्षा माँगना भी विनोदमात्र... उनका युद्ध करना भी विनोदमात्र और 'रणछोड़राय' कहलाकर भाग जाना भी विनोदमात्र। उनके लिये तो सब विनोदमात्र है लेकिन सामनेवाले का जीवन बदल जाता है। सूर्य के लिये प्रकाश देना तो स्वाभाविक है लेकिन सारी वसुन्धरा के लिये जीवनदान हो जाता है। ऐसे ही ज्ञानी महापुरुषों की तो स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है लेकिन हम लोगों के हृदय में आनंद और उल्लास छा जाता है, हमारे जीवन में ताजगी और स्फूर्ति छा जाती है, सद्प्रेरणा, सद्प्रवृत्ति सत्स्वरूप परमात्म-प्रीति जागृत हो जाती है। हमारे जीवन में एक नई रोशनी छा जाती है, समझ आ जाती है। वे ही बताते हैं :

ऐ तालबेमंज़िले, तू मंज़िल किधर देखता है?
दिल ही तेरी मंजिल है, तू अपने दिल की ओर देख।
ऐ सुख के तलबगार ! ऐ सुख को ढूँढनेवाले!
तू सुख को कहाँ खोजता है?
सुखस्वरूप तेरा अपना-आपा है, उसी में तू देख।
लुत्फ कुछ भी नहीं जहाँ में, लेकिन दुनिया जान दे देती है।
बंदे को अगर खुद की खुदाई का पता होता, न जाने क्या कर देता?
तू सुख को कहाँ खोजता है?

अपना आनंद, अपनी खुशी, अपना ज्ञान, अपना आत्मिक खजाना अगर समझ में आ जाये तो बंदा कितना धन्य-धन्य हो जाये!

यह ब्रह्मविद्या अद्‌भुत चमत्कार करती है। शरीर का ढाँचा वही का वही, नाम वही का वही, लेकिन गुरुदेव थोड़ी समझ बदल देते हैं तो दुनिया कुछ और ही निगाहों से दिखने लगती है। यह ब्रह्मविद्या ही है, जिससे सब शोक, चिंताएँ, क्लेश, दुःख नष्ट हो जाते हैं।

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।

ब्रह्मवेत्ता महापुरुष की दृष्टि जहाँ तक पड़ती है एवं जहाँ तक उनकी वाणी जाती है वहाँ तक के जीवों को तो शांति मिलती ही है लेकिन जब वे मौन होते हैं, एकांत में होते हैं तो ब्रह्मलोक तक के जीवों को मदद मिलती है और उन्हें पता भी नहीं होता है कि मैंने किस-किसको मदद की है। जैसे सूर्य नारायण सदा अपनी महिमा में स्थित रहते हैं। उनके प्रकाश से कितने जीवों ने जीवन पाया - क्या वे इसकी गिनती रखते होंगे? नहीं। सूर्यदेव अपनी जगह पर स्थित होते हुए भी, अपने किरण रूपी हाथों से जगत को छूते हुए भी जगत से अलिप्त रहते हैं, ऐसे ही ब्रह्मवेत्ता महापुरुष अपनी महिमा में स्थित होते हुए भी, ब्रह्माकार वृत्ति से ब्रह्माण्डों को छूते हुए भी सबसे अलिप्त रहते हैं। सचमुंच में बढ़िया से बढ़िया काम, बढ़िया से बढ़िया सेवा तो ब्रह्मवेत्ता ही कर सकते हैं। उनकी सेवा के आगे हमारी सेवा की तो कोई कीमत ही नहीं है। ऐसे ही आत्मसाक्षात्कारी पुरुष **'सर्वभूतहिते रताः'** हैं।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणं... जिनका जीता हुआ मन निश्चल भाव से परमात्मा में स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शांत ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

मन को जीतने के हजार-हजार उपाय किये जायें लेकिन जब तक मन को भीतर का रस ठीक से नहीं मिलता तब तक वह ठीक से जीता नहीं जा सकता। तुलसीदासजी महाराज कहते हैं :

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा।

'निज का सुख, अपने आत्मस्वरूप का सुख जब तक नहीं मिला तब तक मन स्थिर नहीं होता है।'

व्रत-उपवास करने से, एकांत जगह में रहने से कुछ समय के लिये मन शांत हो जाता है लेकिन फिर से बहिर्मुख हो जाता है। जैसे, ठण्ड के दिनों में प्रभातकाल की ठंडी से साँप ठिठुर जाता है एवं चुपचाप पड़ा रहता है लेकिन ज्यों ही सूर्य की किरणें मिलीं कि वह अपनी चाल चलने लगता है। ऐसे ही व्रत-उपवास, एकांतसेवन करने से थोड़ी देर के लिये तो मन स्थिर होता है लेकिन ज्यों ही भोग-सामग्री सामने आती है त्यों ही मन उसमें आसक्त हो जाता है क्योंकि उसे भीतर का रस नहीं मिला है। जिन्होंने भीतर के रस को पा लिया है उनका मन तो शांत होता ही है, साथ ही ऐसे महापुरुषों के संपर्क में आनेवालों का मन भी शांत होने लगता है।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः...

जिनके कल्मष दूर हो गये हैं, पाप दूर हो गये हैं वे ऋषि ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त होते हैं।

बड़े में बड़ा पाप है जगत के भोगों को सच्चा मानकर जगदीश्वर को भूलना। जो जगत को सत्य मानकर व्यवहार करता है वह चौरासी के चक्कर में ही घूमता रहता है लेकिन जो जगत को मिथ्या मानकर जगदीश्वर में मन लगाता है, संयम-सदाचार को अपनाता है वह देर-सवेर जगदीश्वर तत्त्व का अनुभव पाने में भी सफल हो जाता है।

इसीलिये भगवान कहते हैं :

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥

*

व्यक्तित्त्व वही है, जो अच्छे संस्कारों से उत्पन्न होता है। ज्ञान वही है, जो मनुष्य की दृष्टि को उदात्त बनाता है। सदाचार वही है, जो स्वयं के साथ-साथ सबको प्रसन्नता उत्पन्न कराता है और परिवार वही है, जहाँ अपनापन और प्रेम का निवास है।

– भर्तृहरि

उचित और सुख को एक कर दें

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

ज्यों-ज्यों भगवद्ज्ञान और भगवद्सुख मिलता है त्यों-त्यों संसार से वैराग्य होता है और ज्यों-ज्यों संसार से वैराग्य होता है त्यों-त्यों भगवद्ज्ञान और भगवद्सुख में स्थिति होती है।

एक होता है उचित, दूसरा होता है सुख। उचित और सुख को एक कर दो तो जीवन परम सुख परमात्मा से सराबोर हो जायेगा और आप जीवनमुक्त हो जायेंगे।

उचित और सुख को जब अलग कर देते हैं तो जीवन विक्षिप्त हो जाता है, दुःखी हो जाता है, अनुचित हो जाता है। जैसे संयम करना, ब्रह्मचर्य पालना उचित है लेकिन देखा किसी युवती को, उसके हाव-भाव को अथवा युवती ने देखा युवक को, उसके हाव-भाव को कि : 'बड़ा अच्छा लड़का है, सुदृढ़ है, मेरी तरफ देखता भी है...' तो यह उचित नहीं है। अनुचित करने में सुख की लालच हो जाती है। जब सुख की लालच को महत्त्व देते हैं तो अनुचित करने लगते हैं और अनुचित का फल भी अनुचित होता है।

सत्य बोलना उचित है, धोखा करना अनुचित है लेकिन देखते हैं कि : 'झूठ बोलने से लाभ हो रहा है... धोखा करने से इतना मिल रहा है...' तो उचित को छोड़ देते हैं और अनुचित करने लगते हैं। फिर अनुचित का परिणाम भी देर-सवेर अनुचित ही आयेगा।

नौकरी करते थे एक सज्जन। रिश्वत का पैसा उचित नहीं है - ऐसा सोचकर नहीं लिया। दूसरे

ऑफिसरों की नज़रों में वे मूर्ख साबित हो रहे थे। लेकिन उनका विचार उचित था तो निर्भीकता थी और मितव्ययी बनकर जीते थे।

फिर अनुचित करनेवालों के संपर्क में आये और थोड़ा-सा ले लिया... अनुचित हो गया। अनुचित ढंग से आया वह दस साल रहा फिर ऐसे गया जैसे रुई के गोदाम में आग लगी हो। सब धन चला गया। कोर्ट खा गया, कुछ इधर-उधर हो गया। अनुचित करने का फल उन्हें भोगना पड़ा।

अतः सुख और उचित - इन दोनों को अलग न किया जाये। जो उचित है वही सुखरूप है, भले अभी वह दुःखरूप दिखता हो। जो उचित है वही सत्य है। सत्य ही उचित है, असत्य उचित नहीं है। जो सत्य है वह शाश्वत् है। जो सत्य है वह चेतन है। जो सत्य है वह आनंदस्वरूप है।

आप होशियार बनो। अपना ज्ञान बढ़ाओ। अपना ज्ञान... नश्वर का ज्ञान नहीं। 'मैं कौन हूँ ? जीव किसको बोलते हैं ? ईश्वर किसको बोलते हैं ? माया किसको बोलते हैं ?' इसी प्रकार अपना ज्ञान बढ़ाओ, दूसरों का ज्ञान बढ़ाओ।

सत् + चित् + आनंद = सच्चिदानंद। उचित है कि हम अपने सच्चिदानंद परमेश्वर की शरण जायें। शरीर की शरण न जायें। अनुचित की शरण न जायें। उचित की शरण जायें।

जब उचित और सुख एक होता है तो आपके कदम ठीक जगह पर पड़ते हैं, ठीक निर्णय होते हैं, ठीक प्रयत्न होते हैं, ठीक परिणाम आते हैं। यदि दैवयोग से, प्रारब्ध से, वातावरण से, राजनीति से कहीं आपका शोषण अथवा अन्याय होता है फिर भी आप उचित ढंग से सह लेते हैं तो भीतर से आप बलवान् रहेंगे।

अनुचित ढंग से आपका राजनीति से, इधर से, उधर से कहीं पोषण भी होता हो, थोड़ा सुख भी मिलता हो लेकिन अंदर से आप खोखले हो जायेंगे। बिल्कुल पक्की बात है।

उचित और सुख का पार्थक्य कर देंगे तो उचित छोड़ देंगे और अनुचित करके सुखी होने की बेवकूफी करेंगे। अनुचित ढंग से खाकर मजा लिया फिर बीमार हुए। अनुचित ढंग से व्यवहार किया, उस समय मजा आया लेकिन बाद में भुगतना पड़ता है।

कहावत है न, दूध का दूध और पानी का पानी।

आज उचित का महत्त्व नहीं रहा... धर्म का, शास्त्र का, नियम का, सदाचार का, दूसरे की भलाई का महत्त्व नहीं रहा। अपने को मजा आ जाये, अपनी भलाई हो जाये... फिर अनुचित ढंग से हो जाये तो हो जाये।

ऐसा करने लगे हैं तो सभी दुःखी हैं। दुःख बढ़ गया है। सेठ भी दुःखी है तो नौकर भी दुःखी है। माई भी दुःखी है, भाई भी दुःखी है। पठित भी दुःखी है, अनपढ़ भी दुःखी है। नेता भी दुःखी है, जनता भी दुःखी है। अधिकारी भी दुःखी है, कर्मचारी भी दुःखी है।

अनुचित करके सुखी होने की गलती मिटाने को कटिबद्ध हो जायें। इसमें सहायता मिलती है भगवन्नाम से, शास्त्र-पठन से, अपने जीवन में कुछ व्रत-नियम के पालन से। अपने जीवन में कोई-न-कोई बढ़िया व्रत-नियम ले लें। व्रत-नियम को ध्यान के समय भी दुहरायें। इससे उस व्रत-नियम का पालन करने में मदद मिलती है।

जो उचित नहीं है वह भविष्य में सुखकारक नहीं है, भले अभी लगे। अतः उचित करेंगे। संयम उचित है, विकार अनुचित है। मौन उचित है, अति बोलना अनुचित है। नियम से खाना-पीना उचित है, अनियमित रूप से खाना-पीना अनुचित है। गृहस्थी हैं तो संयम से संसार-व्यवहार करना उचित है लेकिन अमावस्या, पूनम, एकादशी, जन्मदिवस अथवा महीने में एक से अधिक बार पति-पत्नी का व्यवहार अनुचित है। आज से अनुचित बंद। ऐसे ही प्रदोष काल में भोजन और मैथुन अनुचित है तो बंद।

जप करना, ध्यान करना, दान करना, पुण्य करना, सत्संग करना, स्वाध्याय करना, सेवा करना, नम्र बनना, आप अमानी रहना दूसरों को मान देना, अभय रहना, सत्त्वसंशुद्धि रखना, अहिंसक रहना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना यह उचित है। उचित का वरण... इससे सुख की, सफलता की प्राप्ति होगी और मुक्ति की यात्रा अवश्य पूर्ण होगी।

रहते हैं मंदिर में, मस्जिद में, चर्च में, लेकिन अनुचित करेंगे तो चर्च क्या करे ? मस्जिद क्या

करे ? मंदिर क्या करे ? भगवान क्या करे ? रहते हैं मंदिर-मस्जिद में और उचित करते हैं तो मंदिर-मस्जिद का विशेष लाभ मिलेगा। जरा-जरा बात में झूठ बोलेंगे, आलसी बन जायेंगे, चोरी करेंगे तो फिर अनुचित करने पर उचित जगह का लाभ विशेष नहीं मिलता। इसलिये अनुचित न करें। अगर हो गया है तो व्यक्त करके दुबारा न करने का दृढ़ संकल्प कर लें। जो अनुचित करके भी सुखी होना चाहते हैं वे ज्यादा बीमार होते हैं, ज्यादा दुःखी होते हैं। इसलिये उचित और सुख को अलग न करें। जो उचित है, वही सुखकर है। अतः सदैव उचित का ही वरण करें और अनुचित का त्याग करें।

'ऋषि प्रसाद' स्वर्णपदक प्रतियोगिता का चिरप्रतीक्षित परिणाम

'ऋषि प्रसाद' के जिन संन्निष्ठ एवं तत्पर सेवाधारियों ने अपने सद्गुरुदेव के पावन संदेश को अधिकतम संख्या में जन-जन तक पहुँचाकर, ८ अप्रैल २००१ को दिल्ली में पूज्य बापूजी के पावन करकमलों द्वारा 'स्वर्णपदक' प्रसाद रूप में प्राप्त किये उन महाभाग्यशाली विजेताओं के नाम इस प्रकार हैं -

१. श्री वजुभाई ढोलरिया — *सूरत*
२. श्री अतुलभाई विठलाणी — *राजकोट*
३. श्री विश्वनाथ अग्रवाल — *दिल्ली*
४. श्रीमती जया कृपलानी — *भोपाल*
५. श्री वृंदावन गुप्ता — *दिल्ली*
६. श्री त्रिलोक सिंह — *हिसार*
७. श्री महेशचन्द्र शर्मा — *कोलकता*
८. श्री घनश्याम करनानी — *दिल्ली*
९. श्री दिनेशभाई डी. जोशी — *अमदावाद*
१०. श्री राजेश जालान — *बिलासपुर*
११. श्रीमती तारा सी. बडगूजर — *उल्हासनगर*
१२. श्रीमती काबेरी सरकार — *जामनगर*
१३. श्री किरीटभाई राठौड़ — *जेतपुर*
१४. कु. नूतन यादव — *जलगाँव*

सभी स्वर्ण पदक विजेताओं व पुरस्कार पानेवाले अन्य सभी सेवाधारियों का हार्दिक अभिनंदन। भविष्य में भी आप सभी सेवादार पूज्यश्री के दिव्य प्रसाद को जन-साधारण तक पहुँचाने का दैवीकार्य करते रहेंगे... इसी शुभकामना के साथ...

- 'ऋषि प्रसाद' प्रधान कार्यालय, अहमदावाद.

संकल्पों की प्रतिध्वनि

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

आप कल्पना करें कि आप सड़क से गुज़र रहे हैं। सड़क पर दो व्यक्ति आपस में लड़ रहे हैं। उनमें से एक व्यक्ति का भाव और चेष्टाएँ सज्जनता का परिचय दे रही हैं और दूसरे की दुष्टता का। उससे आपका कोई लेना देना नहीं है, कोई रिश्ता नहीं है, फिर भी कुछ-न-कुछ विचार आपके हृदय से निकलकर उनकी तरफ चले जायेंगे। फिर चाहे आपको इस बात का पता हो या न हो, लेकिन ऐसा होता है।

मान लो, सज्जन दबाया जा रहा है और दुष्ट उसे दबोच रहा है। आप जैसे १०-१५ लोग देख रहे हैं। कोई उनके बीच में बोलता नहीं है, उन्हें कोई मदद नहीं करता है लेकिन फिर भी आपकी गुप्त मदद पहुँच जाती है। आपके मन में संकल्प उठे कि : 'अरे, सज्जन बेचारा दबाया जा रहा है !' आपके ये संकल्प सज्जन तक पहुँच गये। उस सीधे-सादे सज्जन व्यक्ति में ऐसा बल आ गया कि उसने एक पत्थर उठाकर दुष्ट को दे मारा। सिर फूटा और रक्त बहा। अब ३०७ की कलम तो थाने में उस सज्जन पर लगी लेकिन आप सभी ने उसे ३०७ में मदद की। कैसे ? अपने संकल्पों के द्वारा।

दूसरा उदाहरण देखें। आप ऑफिस में बैठे हैं। किसी की फाइल देखते-देखते विचार कर रहे हैं कि 'ओ.के.' करूँ या न करूँ ? आपने ८०-९०

प्रतिशत मन बना लिया है । इतने में एक आदमी आया । उसने फाइलवाले व्यक्ति की तरफ नज़र डाली और मुस्कुराया । आपने दोनों की तरफ नज़र डाली और पूछा : ''आप इसको पहचानते हैं ?''

''हाँ, ये तो बहुत सज्जन व्यक्ति हैं ।''

आपने ८०-९० प्रतिशत मन तो पहले ही बना लिया था । आनेवाले व्यक्ति ने १०-२० प्रतिशत मिलाकर १०० प्रतिशत मन बना दिया और आपने उसकी फाइल 'ओ.के.' कर दी : ''ले जाइये भैया ! कोई बात नहीं । यह तो अपने ही घर का काम है ।''

अगर फाइल देखते-देखते आप ८०-९० प्रतिशत पर रुके हुए हैं और आगंतुक व्यक्ति आकर कुछ नहीं कहता लेकिन उसके हाव-भाव एवं तरंग से ८० का ७०-६० प्रतिशत पर मन चला जाता है तो आप कह उठते हैं : ''भैया ! अभी नहीं । इसको ठीक से देखना पड़ेगा ।''

उसका होनेवाला काम भी गड़बड़ा जाता है । मानना पड़ेगा कि संकल्पों की प्रतिध्वनि अवश्य पड़ती है ।

इसलिये कभी-भी ऑफिसर के पास जाओ तो उस समय जाओ जब वह नाश्ता-भोजन आदि करके बैठा हो, तृप्त होकर बैठा हो । तभी काम करने का मूड़ होता है ।

कुछ वर्ष पहले की बात है : एक लड़का मेरे पास आया और बोला : ''बापूजी ! मैंने ट्रेन का पास निकलवाया है । अमदावाद से पालनपुर डेढ़ सौ किलोमीटर है । हर रविवार को अमदावाद आश्रम में सत्संग सुनने आता हूँ । जिस दिन मैं पास भूलकर आता हूँ या पास की तारीख पूरी हो चुकी होती है, उसी दिन पालनपुर के गेट पर टी.टी. पास चेक करता है । जब पास होता है तब कभी चेक नहीं करता । बापूजी ! वे टी.टी. योगी नहीं हैं, अंतर्यामी नहीं हैं । वे सिगरेट पीते रहते हैं , कभी एक के दो भी कर लेते हैं फिर भी उनको कैसे पता चलता है कि इस प्रवासी के पास की समयावधि पूरी हो गयी है या वह भूलकर आया है तो पूछूँ ?''

मैंने कहा : ''वे योगी नहीं हैं लेकिन पास की समयावधि पूरी हो गई है या भूल गये हो यह तुम्हें पता होता है । 'टी.टी. पूछ न ले... पूछ न ले...' ये तुम्हारे भाव टी.टी. को आमंत्रित कर देते हैं कि इससे पूछो ।''

यह सारा संसार संकल्पों की, भावों की प्रतिध्वनि है । जैसा पिंड में वैसा ही ब्रह्माण्ड में... यह बात जाननेवाले संत-महापुरुषों के द्वारा वातावरण को, समाज को बड़ा लाभ हो जाता है ।

आपके संकल्पों का प्रभाव वातावरण पर, व्यक्ति पर अवश्य पड़ता है । किन्तु प्रभाव तभी पड़ता है जब आपकी एकाग्रता होती है । जितनी एकाग्रता, सदाचारिता ज्यादा उतने संकल्प प्रभावशाली होते हैं । जितनी एकाग्रता, सदाचारिता कम उतना संकल्पों का प्रभाव भी कम होता है ।

ध्यान में जो देवी-देवता आदि दिखते हैं यह भी आपके संकल्पों की ही प्रतिध्वनि है । फिर आप सोचें कि रोज-रोज दिखें यह संभव नहीं है क्योंकि प्रतिदिन तुम्हारे भाव-संकल्प एक जैसे नहीं होते । फिर भी यदि रोज तुम्हारे मन के संकल्प से दिख भी गये तो क्या हो गया ? इसलिये उसका आग्रह नहीं रखना चाहिये । दिख गया तो दिख गया... ठीक है । आपका संकल्प औरों को प्रभावित करे - यह भाव भी न रखें वरन् आप तो केवल अपने परम लक्ष्य परमात्म-प्राप्ति की ओर ही अग्रसर होते जायें ।

बलवान् मन का प्रभाव दुर्बल मन पर पड़ता है । यदि आपका मन बलवान् है तो किसीके भूत-भैरव, टूने-टोटके आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते । जितना आपका मन सत्य के, ईश्वर के करीब होगा उतना ही मिथ्या वासनावालों का प्रभाव आप पर नहीं पड़ेगा । अतः अपने मन को संयम, सदाचार और ध्यान से बलवान् बनाओ ।

बल बढ़ाने का मूल केन्द्र है परमात्मा । जैसे, सूर्य की किरणें बिखरी हुई होती हैं तो कोई विशेष गर्मी पैदा नहीं कर सकतीं लेकिन वे ही किरणें बिलौरी काँच के द्वारा एकत्रित होकर अग्नि उत्पन्न कर देती हैं । ऐसे ही आपके चित्त की वृत्तियाँ बिखरी हुई होती हैं तो कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखा पातीं लेकिन चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करो तो आपका

संकल्प भी प्रभावशाली हो जायेगा।

कभी-कभी आपने संकल्प किया, उस समय पूरा नहीं हुआ लेकिन वह तीव्र हो तो शरीर छूटने के बाद भी वातावरण में वह संकल्प काम कर जाता है। यही कारण है कि महापुरुष अपने कार्य का उद्देश्य बना लेते हैं। वे कार्य उनके उपस्थिति काल में कदाचित् पूरे नहीं भी हों फिर भी देर-सवेर वह कार्य पूर्ण होकर ही रहता है।

स्वामी विवेकानंद ने खेतड़ी के महाराजा को पत्र लिखा था : ''मैं विदेशों में इस उद्देश्य से लगा था कि हमारे भारत में लोग शोषित हो रहे हैं वे पढ़-लिखकर अपने अधिकार की आवाज उठायें, लेकिन ईसाई मिशनरियों ने मुझे बुरी तरह बदनाम कर डाला। राजन्! लोग भले ही मुझे काल्पनिक पुरुष समझें पर भारत के गाँव-गाँव और घर-घर में साक्षरता-अभियान चलेगा, साक्षरता आयेगी। मेरा यह संकल्प पूर्ण होगा ही। यह कार्य मेरे उपस्थिति काल में नहीं हुआ फिर भी मेरा संकल्प यह कार्य करवायेगा।''

आज वह कार्य हो रहा है, साक्षरता की ओर हम चल रहे हैं।

स्वामी रामतीर्थ ने कहा था : ''ऐ भारत! अब आज़ाद हो जा। अंग्रेजों के शासन से भारत आज़ाद होगा, अपने पैरों पर खड़ा होगा। हमारा भारत आज़ाद होकर रहेगा।''

स्वामी रामतीर्थ का यह संकल्प मोहनलाल करमचंद गाँधी के द्वारा साकार हुआ और भारत आज़ाद हो गया।

संकल्प तो आपने फेंका लेकिन उसे झेलनेवाला जो जीव होगा, उसके द्वारा भी आपके संकल्प यहाँ काम करेंगे। आपके शब्द, आपके संकल्प नष्ट नहीं होते, आकाश में विद्यमान रहते हैं।

• व्यक्ति चले जाते हैं लेकिन वातावरण में उनके स्पन्दन रहते हैं। सिनेमा थियेटर में जाने से ही लोग अपना कॉलर ठीक करने लगते हैं, बाल सँवारने लगते हैं... उनका मानस सिनेमाहॉल के प्रभाव से प्रभावित होने लगता है। इसी प्रकार किसी निपट निराले व्यक्ति को शुद्ध पवित्र साधनास्थली में ले आओ तो वह भी उस पवित्र साधनास्थली के प्रभाव से पवित्र विचारों से प्रभावित होकर पवित्र सुमिरन-चिंतन करने लगेगा। कितनी सूक्ष्मता और दृढ़ता होती है संकल्पों में!

संकल्पों के स्पन्दन अवश्य कार्य करते हैं। अतः संकल्प करें तो शुभ करें, आत्मोन्नति के करें। श्रेष्ठ में श्रेष्ठ संकल्प है ईश्वरप्राप्ति का। ईश्वरप्राप्ति का दृढ़ संकल्प करके एकाग्रता एवं तत्परतापूर्वक लग जायें तो देर-सवेर वह संकल्प भी साकार हो उठेगा। करो हिम्मत... ईश्वर एवं ईश्वरप्राप्त महापुरुषों का आशीर्वाद आपके साथ है। अतः लग पड़ो दृढ़ता से।

सदैव शुभ संकल्प... मनुष्य जीवन व्यर्थ कर्म, व्यर्थ चीजों के पीछे खोने के लिये नहीं है। मैं परमात्मा का सनातन सपूत हूँ। उसी का ज्ञान पाकर उसी के माधुर्य में मस्त होते जा रहा हूँ।

ॐ... ॐ... ॐ... ॐ शांति... ॐ माधुर्य... ॐ आनंद... ॐ... ॐ...

*

※ क्रोध और क्षुब्धता को त्यागकर अपने पारिवारिक सदस्यों के प्रति स्नेह पूर्ण मधुर व्यवहार करनेवाला व्यक्ति धन, यश और प्रतिष्ठा के साथ-साथ जीवन के सुखों को भी प्राप्त करता है। जो अपने स्वजनों के प्रति क्रोध और क्षुब्धता का व्यवहार करके उन्हें अपमानित करता है, वह स्वयं अपना नाश तो करता ही है, रावण की तरह अपने कुल का भी विनाश कर डालता है।

※ इन्द्र का राजमहल हो या ऐश्वर्य से युक्त विष्णु का महल, यदि वहाँ कोई मूर्ख रहता हो, तो वहाँ कदापि न रहें।

※ दयाहीन धर्म, विद्याहीन गुरु, क्रोधी पत्नि एवं स्नेहरहित स्वजनों को त्याग देना ही उचित है, क्योंकि इनके आश्रय में कभी सुख नहीं मिलता। **– चाणक्य**

को 'मैं' माने एवं संसार को मिथ्या जाने तो कितना भी बेईमान इन्सान होगा उसकी बेईमानी व दुर्गुण घटते जायेंगे और वह महान् बन जायेगा।

सत्संग की और भगवान् को पाने की महत्ता समझ में आ जाये तो मन पवित्र होने लगता है। जब तक भगवान् को पाने की महत्ता का पता नहीं, तभी तक सारे दुःख विद्यमान रहते हैं। ईश्वर को पाने की महिमा नहीं जानते, ईश्वर ही सार है- ऐसा नहीं जानते, तभी तक छल-कपट आदि सारे दुर्गुण विद्यमान रहते हैं। ईश्वर को पाना ही सार है- ऐसा समझ में आ जाये तो सारे छल-कपट कम होते चले जायेंगे। सारी शिकायतें दूर होती चली जायेंगी। फिर वह अपनी गलती की सफाई नहीं देगा वरन् उसे अपनी गलती खटकेगी एवं गलती को निकालने में तत्पर बनेगा। जिसको ईश्वरप्राप्ति की रुचि नहीं है उसको गलती बताओगे तो सफाई देगा, अपनी गलती नहीं मानेगा और ज्यों-ज्यों सफाई देगा त्यों-त्यों उसकी गलती गहरी उतरती जायेगी। उसको पता ही नहीं चलेगा कि : 'मैं अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मार रहा हूँ।'

जो गलती की सफाई देगा, चतुराई करेगा, कपट करेगा उसके जीवन में फिर सच्ची उन्नति नहीं हो सकेगी। जो औरों को धोखा देता है उसको भी कोई-न-कोई बड़ा धोखा दे देता है। दगा किसीका सगा नहीं। झूठ-छल-कपट... इसी से सारे दुष्कर्म उत्पन्न होते हैं और यह सब होता है शरीर एवं संसार को सत्य मानने से। संसार को सत्य मानना, संसार की चर्चा करना, आत्मा-परमात्मा से प्रीति नहीं करना- यही सारे दुःखों का मूल है।

जो केवल परमात्मा को ही सत्य मानकर उसे पाने का यत्न करता है, उसके लिये ईश्वरप्राप्ति सरल है। जो भगवान् की प्रीति, भगवान् की प्रसन्नता एवं भगवद्स्वरूप के ज्ञान के लिये ईमानदारी से सेवा करता है उसके लिये भगवद्प्राप्ति सहज है। ऐसा साधक शीघ्र ही परमपद को पाकर समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है। परमसुख स्वरूप अपने आत्मा-परमात्मा में प्रीति और तृप्ति का अनुभव करता हैं।

*

महापुरुषों के पास हजारों युक्तियाँ हैं

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

[१९-१०-'८२ की सत्संग कैसेट से]

मनुष्य का कर्तव्य है कि उसे जिस चीज से लाभ होता है, उस लाभ को वह दूसरों तक पहुँचाये। जिस चीज से अपनी भलाई हुई, मानवता के नाते वैसी ही भलाई दूसरों की भी हो ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। फिर भले ही वह किसी भी जाति का हो, मनुष्य होने के नाते यह उसका कर्तव्य हो जाता है।

जापान में एक इन्स्टीट्यूट खुला। उसमें प्राकृतिक आहार-विहार एवं आसनों के द्वारा चिकित्सा होती थी और लोग तंदुरुस्त हो जाते थे। अखबारों में, रेडियो में, टी.वी. में उस इन्स्टीट्यूट के समाचारों को प्रकाशित किया गया एवं कई बड़े-बड़े समारोह हुए। राष्ट्र स्तर पर उसका प्रचार हो गया।

इन्स्टीट्यूट के संचालक से पूछा गया कि : ''आपको इन्स्टीट्यूट खोलने की प्रेरणा कहाँ से मिली ?''

तब उस जापानी ने कहा : ''मुझे ये विचार भारत के शवासन से मिले। भारतीय योग के शवासन से तंदुरुस्त होने की पद्धति मैंने पायी।''

भारत के केवल एक शवासन से जापानी ने तंदुरुस्त होने की तकनीक पायी, संस्था चलायी और राष्ट्र-स्तर पर प्रसिद्ध हो गया। लोगों को घर बैठे संदेश मिला कि : 'ऐसे तंदुरुस्त हो सकते हैं।' उन लोगों को भारतीय संस्कृति की दिव्यता की

जरा-सी युक्ति (तकनीक) मिल जाती है तो पूरे देश में फैला देते हैं और यहाँ... इतना सारा खजाना मिल रहा है फिर भी फायदा नहीं उठाते... कैसी दुर्दशा है !

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने योगदृष्टि से, अंतरदृष्टि से जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करके मानव जीवन की उन्नति के गहनतम रहस्य खोज लिये थे। केवल तन की तंदुरुस्ती ही नहीं, बल्कि मन की प्रसन्नता एवं बुद्धि के विकास के अनेकों प्रयोग बताये थे। योगविद्या व ब्रह्मविद्या के सूक्ष्मतम रहस्यों का लाभ जाने-अनजाने में भी आम जनता तक पहुँच जाये, इसलिये प्रज्ञावान ऋषि-महर्षियों ने सनातन सत्य की अनुभूति के लिये जीवन-प्रणाली बनाई। विधि-निषेध का ज्ञान देनेवाले शास्त्र और विभिन्न स्मृतियों की रचना की ताकि हम उत्तरोत्तर उन्नति के मार्ग पर चलकर अंत में आत्म-विश्रांति के पद पर पहुँच जायें। लेकिन आज के मानव का आलस्य कहो, नादानी कहो, स्वार्थपना कहो, खुदगर्जी कहो... किसी महापुरुष के पास कितना खजाना है यह नहीं देखेंगे, उनकी वाणी से कितना लाभ होता है यह नहीं देखेंगे, उनके सान्निध्य से जीवन कितना उन्नत होता है यह नहीं देखेंगे, वरन् 'विवेकानंद ऐसा करते थे ...स्वामी रामतीर्थ ऐसा करते थे... और ये तो ऐसा करते हैं... वैसा करते हैं...' ऐसा करके कुप्रचार में लग जाते हैं और महापुरुषों के पास जो आत्मखजाना है उसे लेने में ऐसे ही अभागे रह जाते हैं।

संत-महापुरुष आते हैं तो कई शिष्य-साधक धीरे-धीरे सेवा करके कुछ आश्रमादि बनाते हैं। संत विद्यमान हैं तब तक तो सब ठीक लेकिन संत चले जाते हैं तो ट्रस्टी लोग उनके मालिक बनकर बैठ जाते हैं। फिर न किसी साधु-संत की सेवा न समाज की सेवा, बल्कि अपने अहंकार की सेवा में आश्रमों को लगा देते हैं। आश्रमों को खंडहर जैसे बना देते हैं।

बाहर से रंग-रोगन तो बहुत करते हैं लेकिन जिस आश्रम में संत नहीं, वह आश्रम क्या, खंडहर ही है। जैसे शरीर में प्राण, वैसे आश्रम में संत। इतने बड़े-बडे सुंदर आश्रम बने हैं, फिर नया बनाने की कोई ज़रूरत नहीं है लेकिन जो बने हैं वे ऐसे खुदगर्ज लोगों के हाथों में हैं जो केवल अपना अहंकार पुजवाना चाहते हैं। साधकों के लिये, सत्पुरुषों के लिये, संतों के लिये उन आश्रमों में जगह नहीं है।

आप हरिद्वार में साधना करने जाओ तो बड़े-बड़े आश्रम दिखेंगे लेकिन आप साधना नहीं कर पाओगे। आपको पर्णकुटीर बाँधनी पड़ेगी। नर्मदा किनारे भी बड़े-बड़े आश्रम हैं लेकिन आप वहाँ साधना करने जाओ तो नहीं कर सकते क्योंकि वहाँ ऐसे-ऐसे 'नाग' बैठे हैं कि उनकी गुलामी से ही आपको ऊँचे नहीं आने देंगे।

भारत में कई ऐसे महापुरुष हैं जिनके पास अमाप सामर्थ्य है, अखूट आत्म-खजाना है, दिव्य आत्म-अमृत है लेकिन ऐसा कोई दुर्भाग्य है भारतवासियों का कि वे पूरा लाभ नहीं उठा पाते। सारा विश्व जिनके दिव्य अमृत की एक बूँद को पाकर ही परितृप्ति का एहसास कर सकता है उनके अमृत की एक बूँद पाना भी मुनासिब नहीं हो पा रहा।

खेत सूख रहा है और कुएँ में पानी लबालब भरा है ! मोटर लगी हुई है, नालियाँ भी बनी हुई हैं लेकिन मोटर चालू करके खेत में पानी पिलाने का किसीको सूझता ही नहीं है। समाज में अशांति, भय, विरोध, परेशानियों से जीवनरूपी खेत सूख रहा है और उसको हरा-भरा बनाने में समर्थ तत्त्ववेत्ता, योगी, ज्ञानी, परोपकारी, प्रसन्नात्मा महापुरुषरूपी कुएँ लबालब भरे हुए हैं। फिर भी समाजरूपी खेत बेचारा सूखता जा रहा है। धनभागी हैं वे जो संत और समाज के बीच सेवा की धारा बनकर, समाजरूपी खेत को सींचकर सुपल्लवित करना चाहते हैं। जिनमें ईर्ष्या, अहंकार और दम्भ को छोड़कर सच्चाई, स्नेह, विनम्रता का सद्गुण है, आप अमानी रहकर दूसरों को मान देने का सद्गुण है वे धनभागी लोग समाज व संत के बीच धारा बनने में सफल हो जाते हैं।

ईश्वर को पाना कोई कठिन नहीं है। केवल

अपनी कुंठित बुद्धि को छोड़ना कठिन है, अपना स्वार्थपना छोड़ना कठिन है, अपने अहंकार की पूजा छोड़ना कठिन है।

स्वामी विवेकानंद ने किसीसे कहा : ''मेरा शिष्य, मेरा शेर किसीकी गुलामी करे ? किसीके यहाँ रहे ?''

उसने कहा : ''स्वामीजी ! फिर मैं क्या करूँ ?''

विवेकानंद : ''क्या करूँ, क्या ? त्यागपत्र दे दे, संन्यासी हो जा। भिक्षापात्र ले, भीख माँगकर आ... 'नारायण हरि' कर... अपने को बिखेर दे।''

शिष्य गया। भिक्षा लेकर आया तो विवेकानंद ने कहा : ''तुमको भिखारी बनाने के लिये यह भिक्षापात्र नहीं दिया है लेकिन जन्म-मरण का भिखारीपना मिटाने के लिये मैंने यह भिक्षापात्र दिया है।''

संत-महापुरुषों की प्रत्येक चेष्टा में बड़ा राज़ होता है। हमारा मन जिसको अच्छा मानता है उसको करता है और जिसको अच्छा नहीं मानता उसको नहीं करता। लेकिन गुरु को जैसा अच्छा लगता है, महापुरुषों को जैसा अच्छा लगता है वैसा करो तो कल्याण ही कल्याण है।

महापुरुषों की इच्छानुसार चलनेवाले तो कोई विरले ही होते हैं, बाकी तो अपना स्वार्थ सिद्ध करनेवालों की भीड़ होती है कुछ तो ऐसे अभागे होते हैं कि संत-महापुरुषों के पास जाना तो दूर, उनके व्यवहार की कमियों को ढूँढ़कर उनके ही कुप्रचार में लग जाते हैं। ऐसे अभागे मनुष्य स्वयं तो अपना नुकसान करते ही हैं, औरों की श्रद्धा को ठेस पहुँचाने का बड़ा पाप भी अपने सिर पर ले लेते हैं।

भारतवासियो ! सावधान !! ऐसे लोगों के कुचक्रों एवं षड़यंत्रों से सावधान रहना। उनके चक्कर में कभी न आना। याद रखना : तुम उन्हीं ऋषि-मुनियों की संतान हो जिन्होंने केवल तन की तंदुरुस्ती के ही उपाय नहीं खोजे हैं वरन् मन की प्रसन्नता और बुद्धि को बुद्धिदाता में लगाने की युक्तियाँ भी खोजी हैं। मानव को उसके महेश्वर पद तक पहुँचाने की युक्तियाँ जिन्होंने बतायी हैं, तुम उन्हीं ऋषि-मुनियों की संतान हो। एक जापानी केवल शवासन से स्वस्थ रहने की तकनीक जानकर जापानियों को लाभान्वित कर सकता है तो तुम्हारे महापुरुषों के पास तो ऐसी हजारों तकनीकें हैं, हजारों युक्तियाँ हैं जिन्हें आजमाकर तुम सुखी, समृद्ध एवं सम्मानित जीवन जी सकते हो और परम सुखस्वरूप परमात्मा के आनंद को भी पा सकते हो। उठो... जागो... देर मत करो। अभी भी वक्त है चेतने का। अतः चेत जाओ।

✲

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

हरि और हर की मुलाकात

एक बार भगवान नारायण वैकुंठ में लेटे हुए थे। लक्ष्मीजी ने देखा कि उनके चेहरे पर एक आश्चर्यकारक मुस्कान छा गयी है। भगवान नारायण उठकर बैठ गये। उनके श्रीमुख एवं हाव-भाव से पता चल रहा था कि वे भावविभोर होकर कुछ देख रहे हैं। लक्ष्मीजी देखकर दंग रह गयीं ! काफी देर बाद भगवान नारायण ने आँखें खोलीं एवं बोल पड़े : ''वाह... वाह... अद्भुत ! अद्भुत !''

लक्ष्मीजी : ''भगवन् ! क्या अद्भुत ?''

नारायण : ''मुझे स्वप्न आया कि कोटि सूर्य एवं कोटि चंद्र का तेज एक साथ प्रकाशित हो रहा है... भगवान सांब सदाशिव कैलास से चल पड़े हैं... वैकुंठ आ रहे हैं... वे आ रहे हैं इस खुशी में मैं उठकर बैठ गया एवं ध्यानस्थ हो गया। चलो लक्ष्मी ! हम उन्हें लेने जायें।''

लक्ष्मी और नारायण वैकुंठ से शिवलोक की तरफ चले। सामने से शिव-पार्वती आते हुए दिखाई दिये। बीच रास्ते में दोनों की मुलाकात हो गयी।

नारायण : ''लक्ष्मी ! देखो, मैं सही कहता था न ?''

शिवजी : ''पार्वती ! देखो, मैं सही बोलता था न ?''

नारायण : ''प्रभु ! क्या सही बोले थे ?''

शिवजी : ''नारायण ! आप ही पहले बताओ।''

नारायण : ''मैं तो योगनिद्रा में था। इतने में स्वप्न देखा कि आप पधार रहे हैं।''

शिवजी : ''नारायण ! मुझे भी ऐसा ही हुआ। मैं ध्यानस्थ बैठा था तो लगा कि लक्ष्मीजी के साथ आप पधार रहे हैं तो लेने जाऊँ।''

नारायण : ''मुझे भी ऐसा लगा कि पार्वतीजी के साथ आप पधार रहे हैं तो लेने जाऊँ।''

शिवजी : ''अब चलिये शिवलोक में।''

नारायण : ''नहीं प्रभु ! मैं आपको वैकुंठ में ले जाने के लिये आया हूँ।''

दोनों के हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। नारायण कहते हैं : ''मेरा स्वप्न सत्य है कि आप पधार रहे हैं। अतः मैं आपको लेने आया हूँ।'' शिवजी कहते हैं : ''मेरा ध्यानावस्था का दर्शन सत्य है अतः मैं आपको लेने आया हूँ।''

अब क्या करें ? महादेवजी और आदिनारायण भी विचार में पड़ गये। लक्ष्मीजी पार्वतीजी को देखती हैं और पार्वतीजी लक्ष्मीजी को देखती हैं कि दोनों की मधुर खींचातानी चल रही है। दोनों देवियाँ मंद-मंद मुस्कुरा रही हैं। इतने में नारदजी पधारे। नारायण... नारायण...

नारायण : ''नारदजी ! बड़े ठीक मौके पर आये हो। दुनियादारों के पचड़े तो सँवारते हो लेकिन आज हमारा मामला भी जरा सँवार दो। मुझे ऐसा हुआ कि भगवान सांब सदाशिव पार्वतीजी के साथ वैकुंठ पधार रहे हैं अतः मैं इन्हें लेने के लिये आया हूँ। अब इन्हें वैकुंठ आना चाहिये न ?''

शिवजी कहते हैं : ''नारद ! मैं ध्यानस्थ बैठा था तो मुझे भी लगा कि प्रकाशपुंजस्वरूप, कोटि सूर्य एवं चंद्र एक साथ... बुद्धि के अधिष्ठाता देव सूर्य एवं मन के अधिष्ठाता देव चंद्र अर्थात् ओज एवं शीतलता के उद्गमस्थान... वे भी जिनके आगे लज्जित हों ऐसे उनके भी अधिष्ठानस्वरूप भगवान आदिनारायण लक्ष्मीजी सहित आ रहे हैं। पार्वती से भी पूछ लो। नारद ! अब तुम ही बताओ, नारायण को शिवलोक में आना चाहिये न ?''

नारायण : ''नारदजी ! न्याय करना, शिवजी को वैकुंठ आना चाहिये न ?''

नारदजी असमंजस में पड़ गये। वे सोचने लगे कि : 'क्या न्याय करें ? दोनों का स्वरूप एक है, किसको क्या कहूँ ?'

नारदजी तो दोनों की प्रदक्षिणा करके बोलने लगे : ''हरि ॐ नमः शिवाय... हरि ॐ नमः

शिवाय... नारायण... नारायण...''

आखिर शिवजी ने कहा कि : ''नारद तो न्याय देने की जगह भक्त बनकर परिक्रमा करने लगे ! हम बीच में ही खड़े रह गये, अब कहाँ चलें ?'' लक्ष्मीजी और पार्वतीजी मंद-मंद मुस्कुरा रही थीं। दोनों ने कहा : ''अब उनको ही फैसला करने दो।''

शिवजी : ''लक्ष्मीजी ! आप ही निर्णय करो।''

पार्वती : ''हाँ हाँ, लक्ष्मी बहन जो निर्णय देंगी, वही मान्य रहेगा।''

लक्ष्मीजी : ''शिवजी ने देखा कि उनको प्रभु याद कर रहे हैं एवं उनकी ओर आ रहे हैं... मेरे प्रभु ने भी देखा कि शिवजी वैकुंठ आ रहे हैं। मैं तो यह चाहूँगी कि शिवजी अपने को नारायण समझकर शिवलोक पधारें और भगवान नारायण अपने को शिव समझकर वैकुंठ पधारें। शिव नारायण हैं और नारायण शिव हैं। मैं तो क्षमा चाहूँगी कि आपने मुझे मध्यस्थ बनाया। अन्यथा आप दोनों का स्वरूप एक है तब मध्यस्थ रहनेवाली मैं आपसे अलग कैसे रह सकती हूँ ?''

पार्वतीजी : ''बहन लक्ष्मी ! धन्य हो आप !''

लक्ष्मीजी : ''आप भी धन्य हैं लेकिन मुझे क्षमा करें कि आपमें 'आप'पने और मुझमें 'मैं'पने को मैं आरोपित करती हूँ। आप, मैं, भगवान सांब-सदाशिव और भगवान आदिनारायण... सब एक ही सच्चिदानंद हैं।

जैसे, एक ही सच्चिदानंद स्वप्न में अनेक हो जाता है... भक्त भी बन जाता है और भगवान भी बन जाता है। मंदिर भी बन जाता है और मंदिर का पुजारी भी बन जाता है। ऐसे ही सारी सृष्टि सच्चिदानंद का विलास है।

जो वैष्णव शैव में भेद देखता है वह वैष्णव पद से च्युत है और जो शैव वैष्णव में भेद देखता है वह शैवपद से च्युत है। शिव विष्णु हैं, विष्णु शिव हैं। जीव ब्रह्म है और ब्रह्म ही जीव है।''

मानो, सबकी ज्ञान-समाधि लग गयी। खुली आँख अपने चिदानंद आकाशवत् व्यापक शिवस्वरूप अथवा नारायणस्वरूप अथवा सोहंस्वरूप में निमग्न हो गये।

नारदजी ने कहा : ''माँ ! द्वैत की भक्ति करके तो मैं बड़ा प्रसिद्ध था लेकिन द्वैत में भी अद्वैत के दीदार करानेवाली माँ ! आपके श्रीचरणों में प्रणाम है !

...लेकिन प्रणाम करने की गलती की क्षमा चाहता हूँ। आपको मैं दूसरा मानकर प्रणाम करता हूँ, माँ ! वास्तव में तो नारद लक्ष्मीजी है, लक्ष्मीजी नारद हैं, माँ ! पार्वतीजी लक्ष्मीजी हैं, लक्ष्मीजी पार्वतीजी हैं। शिव नारायण हैं और नारायण शिव हैं। लेकिन माँ ! इस बात की भी मैं क्षमा चाहता हूँ। जब एक ही हैं तो 'शिव नारायण हैं और नारायण शिव हैं...' यह भी तो स्फुरणामात्र है।''

सब पुनः निर्विकल्पस्वरूप में, परब्रह्म परमात्मा के आनंद में, परमात्म-शांति में, सोऽहंस्वरूप में निमग्न हो गये।

ब्रह्माजी ने कहा है :

वेदानुवर्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा।
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते ॥
यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः।
इति मत्वा यजेद् देवं स याति परमां गतिम् ॥

हे ईश्वरभक्तो ! जो विष्णु हैं, वे ही साक्षात् रुद्र हैं और जो रुद्र हैं, वे ही जनार्दन विष्णु हैं। शंकर की निंदा करना प्रयत्नपूर्वक छोड़ दो। दोनों एक ही हैं। जो लोग साक्षात् विष्णु भगवान को शंकर भगवान से पृथक् मानते हैं, वे मनुष्य नरक के भागीदार होते हैं। जो रुद्रदेव तथा नारायण को एकीभाव से देखते हैं, वे मुक्तिपद के भागी होते हैं।

(कूर्मपुराण, पू.वि.अ. : १४.८८,८९)

*

कुटिया को प्रणाम !

देवगढ़ के एक राजकुमार का विवेक-वैराग्य जाग उठा और वह साधु हो गया। एक बार वह अपने गुरुदेव के साथ यात्रा कर रहा था। यात्रा करते-करते मार्ग में एक सुनसान स्थल पर उन्हें एक पुरानी कुटिया दिखी। गुरुदेव ने उस कुटिया की प्रदक्षिणा करके उसको प्रणाम किया और थोड़ी देर वहाँ बैठे। राजकुमार ने भी कुटिया को प्रणाम किया।

जब गुरु-शिष्य चलने को हुए तब शिष्य ने विनम्रता से पूछा : ''गुरुदेव ! इस कुटिया में तो कोई रहता भी नहीं है और न ही कोई मूर्ति है। कुटिया भी जीर्ण-शीर्ण हो चुकी है, फिर आपने इसे प्रणाम क्यों किया ?''

गुरुजी : ''बेटा ! यह सच है कि यहाँ न किसीकी मूर्ति है, न ही किसीकी कब्र। किन्तु यहाँ तो जिसके हृदय में परमात्मा स्वयं प्रगट हुए थे, ऐसे महापुरुष रह कर गये हैं। इसलिये मैंने इस कुटिया को प्रणाम किया।''

यात्रा करते-करते मार्ग में एक दूसरी कुटिया मिली। वह जीर्ण-शीर्ण तो नहीं थी, ठीक-ठाक थी और उसमें एक व्यक्ति बैठा हुआ था। वह व्यक्ति न तो संन्यासी था, न गृहस्थी लगता था न ही जटाधारी साधु। बस, एक सामान्य-सा व्यक्ति ही दिख रहा था। गुरुजी ने उस कुटिया की भी प्रदक्षिणा की और प्रणाम किया। फिर दोनों आगे बढ़े।

थोड़ी दूर जाने पर शिष्य ने पुनः पूछा :

''गुरुजी ! यहाँ तो एक सामान्य-सा व्यक्ति बैठा था। आपने उसे भी प्रणाम किया ?''

गुरुदेव : ''दिखता तो था सामान्य मनुष्य, उसका वेश न साधु का था, न संन्यासी का। फिर भी साधु जिसके लिये साधु बनते हैं, उस तत्त्व में रमण करनेवाले वे आत्मारामी संत बैठे थे। इसलिये मैंने उस कुटिया एवं उन महापुरुष को प्रणाम किया।''

यात्रा में दोनों आगे बढ़ने लगे तो मार्ग में एक तीसरी कुटिया मिली। वह पूर्व में मिली कुटिया से कुछ नई-सी थी। गुरुजी ने उसकी भी प्रदक्षिणा की और प्रणाम किया। तब शिष्य ने कहा : ''गुरुजी ! मुझे बड़ी हैरानी हो रही है कि पहली कुटिया में तो महापुरुष रहकर गये थे, दूसरी में रह रहे थे, किन्तु यह कुटिया न तो जीर्ण-शीर्ण है और न ही इसमें कोई रह रहा है। वरन् यह तो बिल्कुल नई दिख रही है। फिर आपने इसको भी प्रणाम किया ?''

गुरुदेव : ''इस कुटिया में ब्रह्मवेत्ता संत रहनेवाले हैं, इसलिये मैंने इसको पहले से ही प्रणाम कर दिया। जब किसी मंदिर का शिखर बन जाता है और उसमें मूर्ति नहीं होती है तब भी केवल शिखर को देखकर भी लोग प्रणाम करते हैं। मूर्ति होती है तब भी प्रणाम करते हैं और कभी-कभार मूर्ति हटा दी जाती है तब भी, शिखर को देखकर भी लोग प्रणाम कर लेते हैं। लेकिन यहाँ तो अमूर्त नाचेगा, अमूर्त बोलेगा, अमूर्त देखेगा और अमूर्त की कृपा से दूसरों के अन्दर भी अमूर्त प्रगट होगा... यह ऐसी जगह है। इसलिये मैं इसे प्रणाम करता हूँ।''

*

श्रद्धा, नम्रता का पाठ : जापान के गवर्नर

सुञाँ सखणा कोई नहीं, सबके भीतर लाल।
मूरख ग्रंथि खोले नहीं, करमी भयो कंगाल॥

जापान के संत मेईजी के पास एक बार क्योटो के राज्यपाल किटागाकी गये और उन्होंने उनके शिष्य केउची के द्वारा अपना परिचय-पत्र भेजा :

''जाकर गुरुजी से कहो कि क्योटो के राज्यपाल किटागाकी आये हैं, मिलना चाहते हैं।'

संतप्रवर ने वह परिचय-पत्र देखा और रख दिया। फिर बोले : ''जाओ, कह दो उनको कि मैं नहीं मिलना चाहता। मेरे पास समय नहीं है।''

राज्यपाल को धक्का लगा कि मैं बिना बुलाये मिलने आया हूँ और ये बाबा मिलते नहीं हैं ! यह क्या ? फिर भी वह राज्यपाल बुद्धिमान् रहा होगा, तुरंत सावधान हो गया और उसने अपनी सारी उपाधियाँ हटाकर एक सादे कागज पर अपना नाम लिखकर प्रणाम के साथ प्रार्थना की कि : ''मैं दर्शन करना चाहता हूँ।''

संत ने तुरंत कहा : ''अरे ! उससे तो मैं मिलना चाहता हूँ। बुलाओ, बुलाओ !''

राज्यपाल को बुलाया गया और सवा घण्टे तक सत्संग-वार्तालाप होता रहा। राज्यपाल जब धर्म का पहला पाठ श्रद्धा और विनम्रता पढ़कर बाहर आया तो उसके चेहरे पर शांति थी, प्रसन्नता थी।

श्रेष्ठ पुरुषों के आगे मान की इच्छा नहीं होनी चाहिये। नम्रता व श्रद्धा जो धर्म का पहला पाठ है उस पाठ ने किटागाकी को संतों के हृदय में स्थान पाने का सौभाग्य दिया और वे बड़े समझदार, संतुलित, संतसेवी गवर्नर समाज में सुप्रतिष्ठित रहे।

*

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सच्चा धनवान् कौन ?

[रवीन्द्रनाथ टैगोर जयंती : ८ मई २००१]

कबीरजी ने कहा है :

कबिरा यह जग निर्धना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता तेहु जानिये, जा के रामनाम धन होय॥

जिसके पास रोम-रोम में रमनेवाले सच्चिदानंद राम के स्वरूप का धन है, सत्संगरूपी धन है, वास्तव में वही सच्चा धनवान् है, बाकी जगत के सब लोग कंगाल हैं। आत्मधन को पाकर वह इतना मालामाल हो जाता है कि फिर उसे रुपये-पैसे, गाड़ी-बँगला आदि भौतिक धन एकदम तुच्छ लगता है। ऐसे आत्मधनी महापुरुषों के आगे बड़े-बड़े राजा-महाराजा तो क्या, देवराज इन्द्र भी सिर झुका देने में अपना सौभाग्य समझते हैं।

'गुर्वष्टकम्' में आया है :

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं,
यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

'यदि शरीर सुन्दर हो, पत्नी भी रूपवती हो और सत्कीर्ति चारों दिशाओं में फैली हो, मेरु पर्वत जितना अपार धन हो, किन्तु गुरुदेव के श्रीचरणों में यदि मन आसक्त न हुआ हो तो इन सब उपलब्धियों से क्या लाभ ?'

रवीन्द्रनाथ टैगोर ऐसे ही आत्मधन को पाये हुए महापुरुष थे। एक बार वे जापान गये हुए थे। जापान में वे प्रतिदिन सत्संग-प्रवचन करते थे। प्रवचन में प्रथम दिन सौ, दूसरे दिन दो सौ तो तीसरे दिन पाँच सौ... ऐसा करते-करते श्रोताओं की संख्या बढ़ती ही जा रही थी।

जापान में इन प्रवचनों में खानदानी घर का एक वृद्ध भी सीधे-सादे कपड़ों में हररोज जल्दी आकर गुलाब का हार अर्पण करके टैगोरजी के सामने बैठ जाता था।

इस वृद्ध की कुछ खास बातें रवीन्द्रनाथ टैगोर के ध्यान में भी आई थीं। वे देखते थे कि : 'यह वृद्ध रोज मुझसे पहले सत्संगहॉल में आ जाता है और मुझे गुलाब का हार अर्पण करता है। इसके चेहरे पर सरलता और सादगी छायी हुई रहती है। यह वृद्ध रोज ध्यान से सत्संग-श्रवण करके मेरे जाने के बाद ही, अंत में जाता है। बड़ा सात्त्विक लगता है...'

दस दिन तक लगातार नियम से वह वृद्ध सत्संग-प्रवचनों में आता रहा। जब सत्संग की पूर्णाहुति होती है तो सब अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार संतश्री के चरणों में कुछ-न-कुछ दक्षिणा रखते हैं। ऐसे ही टैगोरजी के चरणों में भी किसीने सोना-चाँदी तो किसीने येन (वहाँ की मुद्रा), मेवा-मिठाई आदि रखे। वह वृद्ध भी गुलाब का हार लेकर दर्शन करने आया। उसकी आँखें इस बात की खबरें दे रही थीं कि वह कुछ कहना चाहता है।

टैगोरजी ने अपनी नूरानी निगाहों से उस वृद्ध पर कृपादृष्टि बरसाते हुए पूछा :

''कहो, क्या कहना चाहते हो ?''

''भगवन्! दस दिन तक आपने सत्संगामृत का जो पान कराया उसके लिये मैं आपका सदैव ऋणी रहूँगा। एक बार आप इस गरीब की कुटिया को पावन करने पधारें ऐसी मेरी आपसे प्रार्थना है।''

इतना कहते-कहते तो वृद्ध का गला भर आया। रवीन्द्रनाथ उसकी प्रेमभरी प्रार्थना से सहमत हो गये और बोले : ''मैं आऊँगा अवश्य लेकिन एक शर्त पर कि तुम पैसे खर्च नहीं करोगे।''

वृद्ध अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ चला गया। रवीन्द्रनाथ ने जो दिन और समय तय किया था, उसी समय वह उनको लेने के लिये गुलाब के फूलों से सजायी हुई रोल्सरोयस गाड़ी लेकर पहुँच गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर को हुआ : 'अरे, इस बेचारे गरीब

ने इतना सारा खर्च किया !' टैगोरजी ने अपने सेवक से कहा : ''इसके बच्चों को चुपके से मेरी ओर से २०० येन (जापानी मुद्रा) दे देना।''

हवा से बातें करती हुई गाड़ी पहाड़ी पर स्थित एक विशाल भवन के पास जा पहुँची। दौड़ते हुए द्वारपालों ने आकर रवीन्द्रनाथ टैगोर की गाड़ी का दरवाजा खोला, उन्हें सलामी दी और दूसरी ओर से नौजवान युवकों ने प्रणाम करके उनका स्वागत किया।

भवन में पहुँचकर क्या देखते हैं कि एक भव्य हॉल में सोने की कुर्सी पर रेशम का आसन बिछाया हुआ था। उसके सामने रखे टेबल पर पचास प्लेटें थीं जिनमें से कुछ हीरे जड़ित, कुछ सोने की, कुछ चाँदी की तो कुछ प्लेटिनम की थीं। जो भिन्न-भिन्न सूखे मेवे, ताजे फल एवं विभिन्न मिठाईयों से सजी हुई थीं।

वृद्ध ने टैगोरजी से आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की। आश्चर्य में डूबे हुए टैगोरजी ने कहा : ''अरे भाई ! तुम मुझे कहाँ ले आये हो ? तुम तो मुझे अपने घर ले जानेवाले थे न ?''

वृद्ध : ''प्रभु ! यह घर अपना ही है। ये मेरे चार लड़के और बहुएँ हैं कई मिलकतें हैं जिन्हें ये लड़के ही सँभालते हैं।''

वृद्ध के घर की ऐसी साधन-सम्पन्न स्थिति देखकर टैगोरजी बोले : ''इतने सुखी-सम्पन्न होने के बावजूद भी तुम्हारे रहने का रंग-ढंग, तुम्हारे सीधे-सादे कपड़े, मेरे सामने तुम्हारा झुकना, सरलता से सत्संग में आना, ये सब कैसे... ?''

वृद्ध : ''प्रभु ! जिस सम्पत्ति को पाकर आत्मशान्ति या आत्मसुख न मिलता हो उसके लिये गर्व करना तो मूर्खों का काम है। आपके पास जो आत्मधन का खजाना है वही शाश्वत् शांति और सुख प्रदान करनेवाला है। मेरा धन तो समय गुजरने पर चला जायेगा जबकि आपका आत्मधन तो शरीर की मौत हो जाने के बाद भी सदा साथ रहनेवाला है। वास्तव में आप धनवान् हैं और मैं कंगाल हूँ। आपको मेरा प्रणाम है। आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझे भी इस आत्मधन के खजाने का पात्र बनाने की कृपा करें।''

रवीन्द्रनाथ टैगोर इस श्रीमंत वृद्ध की सादगी, सरलता और सच्ची समझ देखकर प्रसन्न हो गये।

संतों के सामने अपनी बाह्य सम्पत्ति के घमंड में नहीं जाना चाहिये। जनसाधारण की तरह जाने से ही संतों की सच्ची प्रसन्नता प्राप्त होती है। संतों ने जो शाश्वत् धन पाया है उसके सामने जगत की इन नश्वर चीजों का क्या मूल्य ?

नश्वर धन-सम्पत्ति, बँगले, मोटर-गाड़ियाँ आदि पाकर, गर्व करके शाश्वत् परमात्मा की प्राप्ति करानेवाले सत्संगरूपी धन का त्याग करनेवाला धनवान् होते हुए भी निर्धन है जबकि शाश्वत् आत्मधन की कमाई करनेवाला निर्धन होते हुए भी वास्तव में सच्चा धनवान् है।

*

सारा ब्रह्माण्ड ईश्वर का स्वरूप

[श्री रामानुजाचार्य जयंती : २८ अप्रैल २००१]

एक बार श्री रामानुजाचार्य भगवान के श्रीविग्रह को स्नानादि कराके पोंछ रहे थे। पोंछते-पोंछते उनको ऐसा आभास हुआ कि : भगवान की पीठ पर घाव हो गया है। वे काँपने लगे और बोल उठे : ''प्रभु... ! प्रभु... !! यह क्या ? आपकी पीठ पर घाव ?''

कथा कहती है कि भगवान ने कहा : ''हाँ, मुझे घाव हो गया है और यह तुमने ही मारा है।''

''मैंने ? मैं आपको कैसे मार सकता हूँ ?''

''तुम्हीं मेरी पीठ पर घाव करते हो।''

''प्रभु ! मुझसे यह घोर अपराध कैसे हुआ ?''

''तुम जब खण्डन-मण्डन करते हो तब भक्ति आदि का मण्डन करते हो और दूसरों का खण्डन करते हो। दूसरों के रूप में भी तो मैं ही हूँ। सारा ब्रह्माण्ड ही जब मेरा स्वरूप है तो दूसरों का खण्डन मेरा ही खण्डन हुआ। इसीलिये मेरी पीठ पर यह घाव हुआ है।'' कहते हैं कि उसके बाद श्री रामानुजाचार्य ने कभी किसीको दोषी नहीं ठहराया।

अतः कभी-भी हृदय में राग-द्वेषादि की ग्रंथि नहीं बाँधनी चाहिये। जब अपने को ठीक से जान लोगे तब राग-द्वेषादि का तो कोई सवाल ही नहीं रहेगा। फिर न तुम अपने को अच्छा पाओगे न बुरा,

न अज्ञानी पाओगे न ज्ञानी। पूर्ण ब्रह्मज्ञान होने पर ऐसा नहीं लगेगा कि ये अज्ञानी और मैं ब्रह्मज्ञानी।

अष्टावक्रजी महाराज कहते हैं : ''जिस पद को पाये बिना इन्द्रादि देव अपने को रंक मानते हैं उस पद को पाकर ज्ञानी को हर्ष नहीं होता है, यह भी एक आश्चर्य है।''

यत्पदं प्रेप्सवो दीनाः शक्राद्याः सर्वदेवताः।
अहो तत्र स्थितो योगी न हर्षमुपगच्छति ॥

(अष्टावक्र गीता : ४.२)

गीता में भगवान् कहते हैं- **यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।** यज्ञों में जपयज्ञ हूँ। सब यज्ञों में जपयज्ञ श्रेष्ठ है। अन्य यज्ञों में तो काना, कुष्ठी, विदुर, अविवाहित निषेध है किन्तु जपयज्ञ में बालक, बूढ़ा, जवान, स्त्री, पुरुष, लूला-लंगड़ा आदि सभी का अधिकार है।

जिस दिन भगवन्नाम जप में आपकी आसक्ति हो जायेगी उसी दिन भक्ति महारानी आपके हृदय में आ जायेगी।

जप करते समय यदि मन भटके तो भटकने दो, डरो मत ! जप में इतनी शक्ति है कि वह अधिक होने से अपने आप पवित्र होगा और मन को एकाग्र होने में सहाय करेगा। नियमित रूप से किया गया जप एकाग्रता से भी विशेष फलदायी है।

भगवान् के स्वरूप में तो प्रेम हो सकता है, परंतु नाम में प्रेम होना कठिन है और नाम में प्रेम हो जाये तो रसमय जीवन, चिन्मय जीवन हो जायेगा।

यह देह जगत-चिंतन का परिणाम है पर भगवद् चिन्तन व जप से यह दिव्य हो सकता है। देह के जन्म के विषय में आप पराधीन हैं पर अपने कर्मों को दिव्य बनाने में आप स्वाधीन हैं और कर्म दिव्य बनेंगे नियमित प्रतिज्ञापूर्वक जप एवं भगवद्चिंतन और दिखावेरहित सच्ची सेवा से। अब दृढ़ श्रद्धा, विश्वास एवं निष्ठापूर्वक भगवन्नाम जप एवं ध्यान में लग जायें।

भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी

[अंक क्रमांक ९९ से आगे]

उस दासी का नाम चुनियाँ था। जब वह बालक को लेकर अपने घर पहुँची और सारी बात अपनी सास को कह सुनायी, तब सास ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और घर की कलोरी गौ का दूध पिलाकर बच्चे का लालन-पालन करने को कहा। चुनियाँ बड़े प्रेम से बच्चे को सँभालने लगी। बालक साढ़े पाँच वर्ष के लगभग हो गया। वह चलने लगा, तोतली बोली से बोलने लगा। इसी समय चुनियाँ की मृत्यु हो गयी। उसकी सास ने बालक के पिता के पास कहला भेजा कि आकर ले जायें। उन्होंने उत्तर दिया कि : ''ऐसे बालक को लेकर मैं क्या करूँगा। जन्मते ही उसकी माता मर गयी। पालन करनेवाली दासी भी नहीं जी सकी। वह अभागा है। वह जिये या मरे, मुझे उसकी परवाह नहीं।'' बालक अनाथ हो गया। उस रखनेवाला कोई नहीं था। वह द्वार-द्वार पर भटकत फिरता था। बालक की ऐसी अवस्था देखकर मात पार्वती को बड़ी दया आयी। वे ब्राह्मणी का वेष धारण करके प्रतिदिन आतीं और उसे भोजन करा जातीं लोगों को बड़ा आश्चर्य होता कि यह कौन स्त्री है जो प्रतिदिन इस बालक को खिला जाती है। इस प्रकार दो वर्ष और बीत गये।

भगवान् शिव ने पार्वती का व्रत देखकर यह सोचा कि अब इस बालक के भोजन, वस्त्र विद्याध्ययन आदि का प्रबन्ध कर देना चाहिये

उन्होंने राम-शैल पर रहनेवाले श्री अनन्तानन्दजी के प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्दजी को आज्ञा दी । श्रीनरहरिजीने श्रीशिवजी की आज्ञाका पालन किया। बालक को ढूँढ़कर उसका नाम 'रामबोला' रख दिया। गाँव के लोगों से पूछकर वे रामबोला को अयोध्या ले गये। वहाँ विद्वान् ब्राह्मणों की उपस्थिति में एक यज्ञ हुआ और संवत् १५६१, माघ शुक्ल पंचमी, शुक्रवार को उसका यज्ञोपवीतसंस्कार किया गया। बिना सिखाये ही बालक रामबोला ने गायत्री-मंत्र का उच्चारण किया । वहाँ के सभी ब्राह्मण विद्वान् आश्चर्यचकित हो गये।

नरहरि स्वामी ने वैष्णवों के पाँच संस्कार करके राममन्त्र की दीक्षा दी। अवध में ही उन्होंने दस महीनों तक हनुमान टीले पर निवास किया। उन दिनों बालक रामबोला अपने गुरु से विद्याध्ययन करते । उनकी धारण-शक्ति अद्‌भुत थी। वे अधिकांश समय गुरु की सेवा में ही बिताते थे। जो एक बार सुन लेते, वह कण्ठस्थ हो जाता । एक दिन पैर दबाते समय, उन्होंने जन्म से लेकर अब तक की कथा कह सुनायी । उनका बालचरित्र सुनकर गुरुजी का हृदय द्रवित हो गया, करुणा की धारा उमड़ पड़ी, आँखों से आँसू बहने लगे। उनकी उस प्रेम-दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता । गुरुजी ने बालक रामबोला का नाम 'तुलसीदास' रख दिया।

हेमन्त ऋतु आने पर दोनों ने अवधपुरी से यात्रा की। अनेकों रमणीय स्थान, नदी, वन और महात्माओं के दर्शन करते हुए वे सूकरक्षेत्र (सोरों) पहुँचे । गुरु-शिष्य दोनों ही वहाँ, जप, तप, स्वाध्याय करते रहे। श्रीनरहरिजी को भगवान् शिव की आज्ञा का स्मरण हो आया। उन्होंने तुलसीदास को रामचरित सुनाया। कुछ दिनों के बाद वे काशी आये। काशी के शेषसनातनजी तुलसीदासजी की योग्यता पर रीझ गये। उन्होंने नरहरिजी-से माँगकर उन्हें पन्द्रह वर्ष तक अपने पास रखा और वेद-वेदांगों का संपूर्ण अध्ययन कराया। तुलसीदासजीने विद्याध्ययन तो कर लिया, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि उन दिनों भजन कुछ शिथिल पड़ गया। उनके हृदय में लौकिक वासनाएँ जग उठीं और अपनी जन्मभूमिका स्मरण हो आया। अपने विद्यागुरु की अनुमति लेकर वे राजापुर पहुँचे।

राजापुर में अब उनके घरका ढूहामात्र अवशेष था। पता न लगने पर गाँव के भाट ने बताया-जब हरिपुर से आकर नाई ने कहा था कि : "अपने बालक को ले आओ और आत्मारामजी ने अस्वीकार कर दिया, तभी एक सिद्धने शाप दिया था कि छः महीने के भीतर तुम्हारा और दस वर्ष के भीतर तुम्हारे वंश का नाश हो जाये।" वैसा ही हुआ। इसलिये अब तुम्हारे वंश में कोई नहीं है।

उसके बाद तुलसीदासजीने विधिपूर्वक पिण्डदान एवं श्राद्ध किया । गाँव के लोगोंने आग्रह करके मकान बनवा दिया और वहीं पर रहकर तुलसीदासजी लोगों को भगवान् राम की कथा सुनाने लगे। कार्तिक की द्वितीया को भारद्वाज गोत्र का एक ब्राह्मण वहाँ सकुटुम्ब यमुना-स्नान करने आया था। कथा बाँचते समय उसने तुलसीदासजी को देखा और मन-ही-मन मुग्ध होकर कुछ दूसरा ही संकल्प करने लगा। गाँव के लोगों से उनकी जाति-पाँति पूछ ली और अपने घर लौट गया।

वह वैसाख महीने में दूसरी बार आया। तुलसीदास से उसने बड़ा आग्रह किया कि आप मेरी कन्या स्वीकार करें। पहले तो तुलसीदाजीने स्पष्ट 'नहीं' कर दी, परन्तु जब उसने अनशन कर दिया, धरना देकर बैठ गया, तब उन्होंने स्वीकार कर लिया। संवत् १५८३, ज्येष्ठ शुक्ला १३, गुरुवार की आधी रात को विवाह संपन्न हुआ। अपनी नवविवाहिता वधू को लेकर तुलसीदासजी

अपने ग्राम राजापुर आ गये । श्रीतुलसीदासजी अपनी धर्मपत्नी पर मुग्ध हो गये । वे अपनी माता को देखने के लिये जाना चाहतीं तो भी वे अनुमति नहीं देते । वर्षों बीतने पर एक दिन वे अपने भाई के साथ मायके चली गयीं । जब तुलसीदासजी बाहर से आये और उन्हें मालूम हुआ कि मेरी स्त्री मायके चली गयी, तब वे भी चल पड़े । रात का समय था, किसी प्रकार नदी पार करके जब वे ससुराल पहुँचे तब सबलोग किवाड़ बन्द करके सो गये थे। तुलसीदासजी ने आवाज दी, उनकी स्त्री ने पहचानकर किवाड़ खोल दिये । उन्होंने कहा कि :

''तुम्हारा मेरे इस हाड़-मांस के शरीर में जितना मोह है, उसका आधा भी यदि भगवान् से होता तो इस भयंकर संसार से तुम्हारी मुक्ति हो जाती ।''

हाड मांस की देह मम, तापर जितनी प्रीति।
तिसु आधी जो राम, प्रति, अवसि मिटि हि भव भीति॥

तुलसीदासजी की स्त्री साधारण स्त्री नहीं थी, वह हृदय से अपने पति का उद्धार चाहनेवाली सती थी । उसके द्वारा हृदयेश्वर परम सुहृद परमात्मा ने अपने भक्त का मार्गदर्शन करवाया । तुलसीदासजी एक क्षण भी नहीं रुके, वहाँ से चल पड़े । उन्हें अपने गुरु के वचन याद हो आये, वे मन-ही-मन उसका जप करने लगे ।

नरहरि कंचन कामिनी, रहिये इनते दूर।
जो चाहिय कल्याण निज, राम दरस भरपूर॥

जब उनकी पत्नी के भाई को मालूम हुआ तब वह उनके पीछे दौड़ा लेकिन जैसे श्रेष्ठ पुरुष त्यागे हुए वमन की तरफ लालायित नहीं होता वैसे ही संसार के दलदल की ओर लौटे नहीं ये बहादुर वीर । घर में उनकी पत्नी मूर्च्छित पड़ी थी । मूर्च्छा टूटने पर उसने कहा :

''मैं अपने पतिदेव को उपदेश करने के लिये आयी थी । अब वे चले गये, यहाँ मेरी क्या आवश्यकता है ?''

उसने अपना शरीर त्याग दिया । संवत् १५८९, अषाढ़ वदी दशमी, बुध के दिन उस सती ने शरीर त्याग किया था । (क्रमशः)

संयम की कुंजी

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है कि :

'हे रामजी ! यह चित्त जो संसार के भोग की ओर जाता है, उस भोगरूपी खाई में चित्त को गिरने मत दो । भोग को बिसर जाने दो, त्याग दो । वह त्याग तुम्हारा परम मित्र होगा और त्याग भी ऐसा करो कि फिर उसका ग्रहण न हो ।'

जीवन में जो भी वासनाएँ हैं, गंदी आदतें हैं, गंदा आकर्षण है उनका त्याग कर दो । त्याग भी इस प्रकार करो कि पुनः उसके चक्कर में न आओ । जैसे, आदमी वमन कर देता है तो फिर चाहे कितनी भी कीमती चीज खाई हो, रसगुल्ले खाये हों या अन्य मिठाई खाई हो, उसके सामने नहीं देखता । ऐसे ही जिस दोष को, वासना को, गंदी आदत को छोड़ दिया फिर उससे मन को हटाकर अंतर्मुख करना चाहिये ।

बुद्धि को परमात्मशांति में, परमात्मा के आनंद में निमग्न करनेवाला मनुष्य आत्मिक आनंद पाकर मन को अपने वश में करने में सफल हो जाता है ।

मन में कभी सत्त्वगुण, कभी रजोगुण और कभी तमोगुण आता है । जिसने ध्यान करके बुद्धि को शुद्ध किया है उसकी बुद्धि मन के आधीन न होकर मुक्ति के रास्ते चलती है और जिसने जप-ध्यानादि करके बुद्धि को स्वच्छ नहीं किया उसकी बुद्धि मन के कहने में चलती है । मन इन्द्रियों के कहने में और इन्द्रियाँ विषय-विकार की कामना में जा गिरती हैं ।

श्रीकृष्ण ने भी कहा है :

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

'विषयों का चिंतन करनेवाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है । क्रोध से अत्यंत मूढ़भाव उत्पन्न होता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है ।' (गीता : २.६२,६३)

कामना रजोगुणी वृत्ति है, संमोह तमोगुणी वृत्ति है, क्रोध रजो-तमोगुण की मिश्रित वृत्ति का बेटा है। अब क्या करना है ? इनके आवेगों में न बह जायें - ऐसी शुद्ध मति बनाना है ।

शुद्ध मति बनाने के लिये बार-बार चिंतन करें कि : 'मेरा आत्मा शुद्ध है । मैं उसी शुद्ध आत्मा को पाऊँगा । मैं विषयों का चिंतन क्यों करूँ ?

मुर्दे को प्रभु देत है, कपड़ा लकड़ा, आग ।
जिंदा नर चिंता करे, ताके बड़े अभाग ॥

अब मैंने चिंता छोड़ दी... विषय-विकारों का चिंतन छोड़ दिया... मैं केवल शुद्ध कर्म करके अपनी बुद्धि को शुद्ध बनाऊँगा... शुद्ध अन्न खाकर अपने शरीर को स्वस्थ रखूँगा... शुद्ध भावों से अपने मन को शुद्ध रखूँगा... शुद्ध चिंतन से बुद्धि को भगवद्प्राप्ति के अनुकूल बनाऊँगा... भगवद्भाव में, भगवद् आनंद में, भगवद् माधुर्य में ही सार है अतः अब उसी को पाने का यत्न करूँगा...'

इस प्रकार बार-बार चिंतन करें । ध्यान में प्रणव का, गुरुमंत्र का जप करें । सत्साहित्य का अध्ययन-मनन करें तो विषय-विकारों के चंगुल से बचना आसान हो जायेगा ।

एक ही व्यक्ति को कभी सत्त्वगुण, कभी रजोगुण और कभी तमोगुण आकर नाच नचा लेता है। जब उसके जीवन में सत्त्वगुण आता है तो सीधा अर्थ लगाकर संतोष के भाव से तृप्त रहता है । रजोगुण आता है तो कुछ गड़बड़, कुछ संतोष और तमोगुण आता है तो वह अपने ही विनाश की बात सोच लेता है ।

इन गुणों के आधीन वे ही होते हैं जिनकी बुद्धि दुर्बल होती है । उन्हीं की बुद्धि दुर्बल होती है जो बलवान् की शरण से दूर होते हैं और बलवान् की शरण से वे ही दूर होते हैं जो बाहर के विषयों का खूब चिंतन करते हैं ।

स्थानभ्रष्टाः न शोभन्ते दंताः केशाः नखा नराः ।

हर वस्तु अपनी जगह पर ही शोभा देती है। जैसे नाखून, दाँत और बाल अपनी जगह पर होते हैं तभी शोभा पाते हैं । स्थान से भ्रष्ट होते ही उनको फेंक दिया जाता है। इसी प्रकार मनुष्य भी जब तक अपने स्थान पर होता है तब तक उसका मूल्य है । अपने स्थान से भ्रष्ट होते ही वह तुच्छ हो जाता है ।

एक होता है बाह्य स्थान (पद-प्रतिष्ठा आदि) और दूसरा होता है अपना वास्तविक स्थान । जो व्यक्ति अपने आपमें, अपने भाव में, अपने आत्मभाव में रहता है वह इतना महान् हो जाता है कि लोग उसके दीदार करके अपना भाग्य बना लेते हैं ।

व्यक्ति अशोभनीय कैसे होता है ? विषयों का चिंतन करने से, विषयों की माँग बढ़ाने से । जितना हो सके, विषय-विकारों की चर्चा कम-से-कम हो । जितना हो सके, विषय-विकारों की माँग कम-से-कम हो । जितना हो सके, निर्विषय नारायण में विश्रांति पाने का यत्न करें । यही सच्चा सुख, शाश्वत सुख पाने का सही तरीका है । यही समस्त बंधनों से मुक्त होने का आसान तरीका है, यही प्रभु को पाने का राजमार्ग है । गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने कहा है :

जानहुँ जीव तब जागा ।
हरिपद रुचि विषय-विलास विरागा ॥

मनुष्य कब जागा हुआ माना जायेगा ? जब भगवान के चरणों में, भगवद् शांति पाने में उसकी रुचि होगी एवं विषय-विकारों से वैराग्य होगा ।

व्यक्ति की बुद्धि को भ्रष्ट कर देनेवाला क्रोध कहाँ से उत्पन्न होता है ?

कामात्क्रोधोऽभिजायते... कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। कामनाएँ उत्पन्न होती हैं संसार की वस्तुओं को सत्य मानने से, सुखद मानने से। यदि आप ईश्वर को ही सुखद मानें और ईश्वर को ही सत्य मानें तो इन चीजों का सदुपयोग करके आप सुखी हो जायेंगे, लेकिन यदि ईश्वर को सुखद नहीं जाना, सत्य नहीं जाना और नश्वर चीजों को ही सुखद एवं सत्य जानते रहे तो कभी पूर्ण सुखी नहीं हो सकेंगे। कितना भी धन कमा लो, कितना भी बढ़िया स्वास्थ्य पा लो, कितना भी मंदिर-मस्जिद-गिरजाघर-गुरुद्वारे में जाओ, फिर भी सब दुःखों का अंत नहीं हो सकेगा।

सारे दुःखों का अंत तभी होगा जब विषय-विकारों का चिंतन-स्मरण-ध्यान न करें और बुद्धि को परमात्मा में पुष्ट करें। सत्शास्त्र-पठन, स्मरण एवं ध्यान से बुद्धि दिव्य बनायें। बुद्धि के कहने में मन चले और मन के कहने में इन्द्रियाँ चलें। फिर स्वास्थ्य की रक्षा का ध्यान रखकर जो कुछ देखना-खाना-पीना है, करें। ऐसा नहीं कि बाहर जो विषय दिखे उस पर इन्द्रियाँ लपक पड़ें, मन उनके पीछे हो जाये और बुद्धि मन के पीछे हो जाये। यदि ऐसा हुआ तो समझो, पतन हो गया।

जो महापुरुष होकर पूजे जा रहे हैं उन्होंने जप-ध्यान-सत्शास्त्र पठन आदि का सहारा लेकर बुद्धि को शुद्ध किया। शुद्ध बुद्धि से मन को ठीक किया। वे मन के कहने में नहीं चले अपितु मन को अपने कहने में चलाया। इन्द्रियों पर नियंत्रण किया तो महापुरुष बन गये। अतः आत्मज्ञान, परमात्मज्ञान को पाकर बुद्धि को पुष्ट करो।

विषय-विकारों के पीछे मन-बुद्धि घसीटे जायें - यह पतन का कारण है, और शुद्ध संस्कृत बुद्धि के पीछे मन चले, मन के पीछे इन्द्रियाँ चलें तो उत्थान होता है। पतन को सहयोग करो चाहे उत्थान के लिये पुरुषार्थ करो- आपके हाथ की बात है।

पतन आसान है, उत्थान में मेहनत है। पानी का नीचे गिरना आसान है लेकिन पानी को ऊपर चढ़ाने के लिये विद्युत खर्च करनी पड़ती है। वस्तु को नीचे गिराना आसान है, ऊपर चढ़ाना पुरुषार्थ है। ऐसे ही जीव का विषय-विकारों में गिरना आसान है लेकिन विषय-विकारों से बचकर ऊपर उठने में पुरुषार्थ की जरूरत है। जिन्होंने भी पुरुषार्थ किया वे ही महान् बन सके।

हे भारत के महान् सपूतो ! तुम भी श्रीकृष्ण की इस वाणी का मर्म समझकर अपने जीवन को उन्नति की ओर ले चलो... पुरुषार्थी बनो... हिम्मत करो... साहस करो... प्रयत्न करो... 'यौवन सुरक्षा', 'महान नारी', 'पुरुषार्थ परमदेव', 'तू गुलाब होकर महक...', 'योगयात्रा-४' जैसी पुस्तकों का पठन-मनन करके दिव्य जीवन की कुंजियाँ पा लो एवं अपने जीवन को दिव्यता की ओर ले जाओ...

प्रभु के प्यारे ! शाबाश... संतों के दुलारे ! शाबाश...

सब में रहो समभाव प्यारे

सब में रहो समभाव प्यारे, हर्ष में या शोक में।
शीघ्र ही हरिरूप होना चाहता यदि लोक में ॥
क्रोध त्यागो, लोभ त्यागो, मोह त्यागो काम को।
खोज कर निजरूप को, पाओ परम पद धाम को ॥
जिसको नहीं निज रुप की, पहिचान वह नर मूढ़ है।
नर्क में वह पड़े, जो नर देह में आरूढ़ है ॥
है महाधिक्कार सौ-सौ बार, काम गुलाम को।
मूढ़ देहारूढ़ होकर, चूमता है चाम को ॥
रोग से हो ग्रस्त कामी, मौत के मुख में पड़े।
तदपि मूरख मानते नहीं, पाप करने पर अड़े ॥
देह की सुंदर बनावट, देखकर मत भूल तू।
सच्चिदानंद रूप होकर, क्यों चाटता धूल तू।
बार-बार विचार अंदर, गंदगी मैला भरा।
क्या करेगा तू इसे, मल-मूत्र का थैला भरा ॥
जन्मने मरने का तेरा, चक्र चलता आ रहा।
गर्भ से बाहर कभी, फिर गर्भ में ही जा रहा ॥
शरण संतों की ग्रहण, करने में क्यों सकुचा रहा।
आजकल करते ही करते, समय बीता जा रहा ॥
कर ग्रहण गुरु के चरण, जा शरण सद्गुरुदेव की।
मुक्त हो जा शीघ्र भव से, सुरति कर स्वयमेव की ॥

- स्वामी गीतानंदजी महाराज "भिक्षु"

अभिभावकों को चाहिये...

पीनियल ग्रन्थि (योग में– आज्ञाचक्र) की क्रियाशीलता का महत्त्व

पीनियल ग्रन्थि से आशय मानव शरीर में निहित एक ग्रन्थि विशेष से है। यह ग्रन्थि भ्रूमध्य में अवस्थित होती है। यह अत्यंत छोटी किन्तु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थि है। वस्तुतः लाखों वर्ष पूर्व मानव मस्तिष्क के विकास में इस ग्रन्थि की अति सक्रिय भूमिका रही है। अतः उस समय लोगों की शारीरिक और आध्यात्मिक क्षमता कहीं अधिक थी, भावनाओं पर अधिक नियंत्रण था, किन्तु समय के क्रम से यह ग्रन्थि-ह्रास को प्राप्त हुई। आज अवशेषी यह एक लघु ग्रन्थि है और यदि हम इसकी सुरक्षा के समुचित प्रबंध नहीं कर सके तो कुछ हजार वर्षों में यह पूर्णतः नष्ट हो जायेगी।

योग में इस ग्रन्थि का सम्बन्ध आज्ञाचक्र से है। रहस्य वादियों और तान्त्रिकों ने इसे तृतीय नेत्र माना है तथा दर्शनशास्त्री इसे परा मन कहते है। यह पीनियल ग्रन्थि बच्चों में बहुत क्रियाशील होती है किन्तु आठ से दस वर्ष की अवस्था प्राप्त होते-होते उत्तरोत्तर निष्क्रिय होने लगती है और बड़े लोगों में तो अत्यल्प शेष रह जाती है या जीवन में इसका कार्य ही नहीं रह जाता।

यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है क्योंकि योग में यह ग्रन्थि मस्तिष्क को नियन्त्रित एवं व्यवस्थित रखनेवाला केन्द्र है। जिस प्रकार हवाई अड्डे पर नियंत्रक टावर होता है उसी प्रकार यह पीनियल ग्रन्थि मानव मस्तिष्क का निर्देशक नियंत्रक एवं व्यवस्थापक टावर है। योग में इसे आज्ञाचक्र कहते है। 'आज्ञा' शब्द अपने आप में नियंत्रण एवं आदेश-पालन के अर्थ को व्यक्त करता है। जब पीनियल ग्रन्थि का ह्रास प्रारम्भ होता है तो पीयूष ग्रन्थि सक्रिय हो जाती है। इससे मनोभाव तीव्र हो जाते हैं यही कारण है जिससे कई बच्चे भावनात्मक रूपसे असंतुलित हो जाते हैं और किशोरावस्था में या किशोरावस्था प्राप्त होते ही व्याकुल हो जाते हैं एवं न करने जैसे काम कर बैठते हैं। इसका मस्तिष्क की क्रियाशीलता पर संतुलित प्रभाव होता है जो सम्पूर्ण मस्तिष्क को ग्रहणशील स्थिति में रखता है। जिन बच्चों में यह ग्रन्थि नियंत्रित और सुरक्षित होती है वे बच्चे कहीं ज्यादा ग्रहणशील पाये जाते हैं अपेक्षाकृत उन बच्चों से जिनकी यह ग्रन्थि ज्यादा दिन क्रियाशील नहीं रह पाती।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह कि एड्रिनल ग्रन्थि बच्चों के नैतिक आचरण में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अधिकांशतः अपराधी मनोवृत्तिवाले बच्चों की एड्रिनल ग्रन्थि आवश्यकता से अधिक क्रियाशील होती है। बच्चों को शिक्षा देने के क्रम में यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

एड्रिनल ग्रन्थि नियंत्रित रहे, आवेगों, आवेशों एवं अपराधों में मन न गिरे, इसलिये पीनियल ग्रन्थि (आज्ञाचक्र) का विकास अत्यंत आवश्यक है, हितकारी है एवं बच्चों के लिये सर्वोपरि सहायक केन्द्र है।

पीनियल ग्रन्थि के विकास की विधि 'विद्यार्थी तेजस्वी तालिम शिविर' में बतायी जाती है, प्रयोग कराये जाते हैं। बालकों के हितैषियों को चाहिये कि उन्हें अथाह संपत्ति अथाह अधिकार की अपेक्षा अथाह समझ एवं अथाह आंतरिक सामर्थ्य देनेवाले इस प्रयोग में उन्हें आगे बढ़ायें, प्रोत्साहित करें। इससे विद्यार्थियों का मंगल होगा, जीवन के जिस क्षेत्र में होंगे अच्छी तरक्की कर पायेंगे। आवेगों, आवेशों और नकारात्मक विचारों से बचेंगे। सफलताएँ उनके चरण चूमेंगी। कभी-कभार विफलता आ भी गई तो वे समता के सिंहासन पर अचल रहेंगे।

यदि देशवासी इस समर्थ्यदायी तीसरे नेत्र का लाभ उठाने की कला सीखलें तो भारत हँसते-खेलते फिरसे विश्वगुरु बन जायेगा।

एड्रिनल ग्रन्थि के नियमन हेतु शशांक आसन

प्रकारांतर – १
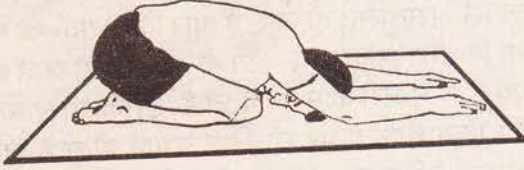
वज्रासन में बैठकर दोनों हाथ घुटनों पर रख लीजिये। पूरे शरीर का ख्याल कीजिये तथा उसे स्थिर और तनावरहित रखिये। धीरे-धीरे श्वास लेते हुए हाथों को सामने से ऊपर उठाइये। श्वास और हाथों की हलचल के बीच तालमेल रखिये। श्वास छोड़ते हुए सामने की ओर झुकिये ताकि छाती जाँघों को तथा कपाल जमीन को छूने लगे। इस स्थिति को शशांकासन कहते हैं।

दोनों हाथ शरीर के सामने जमीन पर फैलाये रखिये, हथेलियाँ जमीन पर टिका दीजिये। इस स्थिति में लगभग दस सेकंड तक सामान्य श्वास प्रश्वास कीजिये। श्वास लेते हुए हाथ, माथा और धड़ उठाइये और वज्रासन की स्थिति में आइये। हाथों को ऊपर उठाए रखिये। यह एक आवृत्ति हुई। ऐसे ही दस आवृत्तियाँ करें।

इस आसन के दौरान श्वास की गति धीमी तथा शारीरिक हलचल के साथ लयबद्धता रखिये, ध्यान मणिपुर चक्र पर अथवा श्वास पर रखिये।

लाभ : शशांकासन का यह तथा आगामी दो प्रकारांतर श्रोणी प्रदेश की पेशियों के लिये अत्यंत लाभदायक है। सायटिका की तंत्रिका तथा एड्रिनल ग्रन्थि के कार्य नियमित होते हैं, कोष्ठबद्धता और सायटिका से राहत मिलती है तथा क्रोध पर नियंत्रण आता है, बस्ति प्रदेश का स्वस्थ विकास होता है तथा यौन समस्याएँ दूर होती हैं।

प्रकारांतर – २

वज्रासन में बैठकर कमर के पीछे दाहिनी कलाई को बाँये हाथ से पकड़ लीजिये। पूरे शरीर का ख्याल करते हुए उसे स्थिर तथा तनावरहित
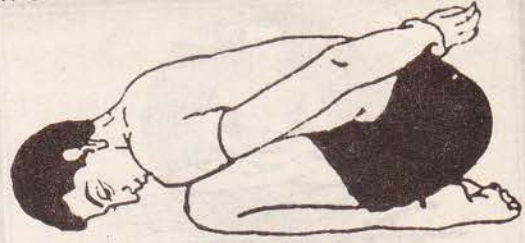
रखिये। धीरे-धीरे गहरा श्वास लीजिये और उसे छोड़ते हुए शरीर को सामने इस तरह झुकाइये कि छाती जाँघों पर तथा कपाल घुटनों के सामने जमीन पर टिक जाये। इस स्थिति में करीब दस सेकंड तक धीरे-धीरे श्वास प्रश्वास कीजिये। अंत में गहरा श्वास लेकर शरीर उठाइये और वज्रासन में वापस आइये। इसी तरह दस बार अभ्यास कीजिये।

प्रकारांतर – ३
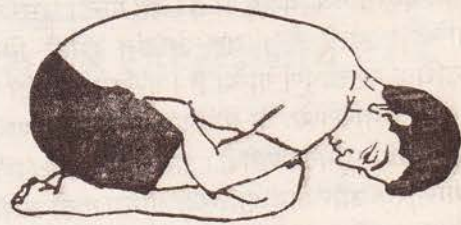
वज्रासन में बैठिये। दोनों हाथों की मुट्ठियाँ जंघामूल पर पेडू से सटाकर रखिये। दोनों हाथों की कनिष्ठायें जाँघों पर तथा अँगूठा ऊपर रहे। गहरा श्वास लीजिये और धीरे-धीरे छोड़ते हुए शरीर को सामने की ओर झुकाते हुए कपाल जमीन पर टिका दीजिये। इस स्थिति में लगभग दस सेकंड तक सामान्य श्वास-प्रश्वास कीजिये। अंत में धीरे-धीरे श्वास लेते हुए शरीर सीधा कीजिये और वज्रासन में आ जाइये। यह एक आवृत्ति हुई। ऐसी ही दस आवृत्तियाँ कीजिये।

स्थूल शरीरवाले व्यक्तियों को आराम तथा सुविधा की दृष्टि से दोनों हाथों की खुली हथेलियाँ पेट पर रखकर यह अभ्यास करना उचित होगा।

लाभ : जिन्हें बहुधा कोष्ठबद्धता (कब्ज) की तकलीफ रहती है इस आसन से बड़ा लाभ होता है। तीसरा प्रकारांतर ऐसे लोगों को तत्काल लाभ पहुँचा सकता है।

*

सद्गुरु अनेकानेक लोगों के लिये छाया के समान हैं। शिष्य वर्ग के लिये तो वे माता के समान ही हैं। उनके प्रति जो असूया प्रदर्शित करेगा, उसकी आत्मप्राप्ति नष्ट हुई समझना चाहिये। अतः गुरु के जो अंकित या अनुग्रहप्राप्त शिष्य हैं, उन सभी को वह शिष्य गुरु के समान ही मानता है। असूया उसके चित्त को छूती तक नहीं है। वह सभी से बड़ा ही प्रेमपूर्ण व्यवहार करता है। इसके विपरीत, कोई गुरुबन्धु कनिष्ठ एवं गरीब हो, उसमें उत्तम गुण भी हों, तो भी उन्हें जान-बूझकर स्वीकार न करना तथा उसके प्रति खोटे आरोप लगाना ये कुशिष्य के लक्षण होते हैं।

दूसरे के उत्तम गुणों को भी मिथ्या दोष लगाकर निन्दित बताना तथा उसके ज्ञान को मिथ्या व खोटा बताना- इसे ही असूया कहते हैं। प्रत्यक्ष भेंट होने पर उसके गुणों का स्तुतिगान करना, नम्रता से चरण पकड़ना लेकिन तत्काल पीछे से उसके प्रति छल करना तथा निंदा करना, इन सबका नाम 'असूया' है। सत्‌शिष्य का वर्तन इस विषय में पूर्णतया शुद्ध ही होता है। वह अपने में असूया दोष उत्पन्न ही नहीं होने देता। कोई उत्तम हो, मध्यम हो या बिल्कुल प्राकृत या साधारण हो उन सभी को वह वन्दन करता है। छल करने का उसे ज्ञान ही नहीं होता।

हे उद्धव ! इस प्रकार किसी भी प्राणी से छल न कर सकना ही सत्‌शिष्य का 'अनसूया' नामक गुण है। इस तरह (१) सम्मान की इच्छा न करना (२) निर्मत्सरता (३) दक्षता (४) निर्ममता (५) गुरु को ही पूर्णरूप से अपना आप्त मानना (६) अंतःकरण का निश्चलपना (७) परमार्थ विषय में अतिशय प्रेम (जिज्ञासता) (८) अनसूया (झूठ, कपट रहित व्यवहार)। इन आठों सद्‌गुणरूपी महामणियों की माला जिसके हृदय में निरन्तर निवास करती है, वह सद्‌गुरु की सन्निधि में पहुँच जाता है। उस भेंट की अपूर्वता का वर्णन क्या किया जाये ?

इसके अतिरिक्त एक नौवाँ लक्षण और है। वह भी विलक्षण ही है। व्यर्थ की बातें छोड़कर वह शिष्य सत्य व पवित्र भाषण ही करता है। सद्‌गुरु से वह बड़ी ही विनम्रता से और मृदु वाणी से प्रश्न करता है और वह भक्तिपूर्वक मानता है कि सद्‌गुरु के वचन सत्यों के भी सत्य हैं। नाना प्रकार की युक्तियाँ लड़ाना, अनेक प्रकार के मत प्रतिपादित करके अकाण्डतांडव करना, पाखण्ड की सहायता से महावाद खड़े करके व्यर्थ गाल बजाते रहना, साधक-बाधक युक्तियों की सहायता से शब्दछल करना और अपनी ही युक्तियों का प्रदर्शन करते रहना... ये सब बातें शिष्य के मन में ही नहीं आतीं।

सद्‌गुरु के सम्मुख वाहियात या अशिष्ट रूप से बोलना बड़ा ही पाप है, ऐसा जानकर वह व्यर्थ की बड़बड़ छोड़ देता है और मिथ्यावाद नहीं करता। शिष्य का बोलना कैसा होता है ? मानों परिपक्व हुई वाणी से निकलनेवाला वह अमृत ही है। दूसरों की दुखती रगों को वह कभी नहीं छूता तथा जो बोलने से दूसरों का मन दुःखी हो अथवा जो बोलना अधर्मयुक्त प्रतीत होता हो, ऐसा बोल वह कभी नहीं बोलता। व्यर्थ शंका वह कभी नहीं करता। निन्दा के विषय में भी वह मूक ही रहता है। उससे कर्कश नहीं बोला जाता दूसरे का उपहास करना उसे नहीं आता। बोलते समय भी वह कुछ आशा रखकर नहीं बोलता। वह केवल निष्काम भाव से और वैराग्यपूर्वक ही बोलता है। उसे मन में गाँठ रखकर बोलना नहीं आता, शब्दछलपूर्वक कुत्सितपना करना भी उसे नहीं आता। अधिक बोलना भी उसे अच्छा नहीं लगता। वह मौन की महानता जानता है और बहुधा मौन रहता है। उसे वादविवाद अथवा वितण्डावाद नहीं रुचता। किसी

से व्यर्थ भाषण करना भी उसे नहीं आता । उसे टेढ़ा बोलना नहीं आता । उसके भाषण में कभी कपट नहीं होता । वह तो निरन्तर सद्गुरु का ही स्मरण करता है । अपने बोलने से वह किसी को उद्विग्न नहीं करता, व्यर्थ बोलने की खटपट नहीं करता । बोलने में वह कभी आवेश नहीं दिखाता । वह ऐसी वाणी ही बोलता है जिससे किसी को उद्वेग न हो । वह ऐसी मधुर हरिकथा ही कहता है जो सत्य होती है, सुनने में आह्लादक होती है तथा सबके लिये हितकारी होती है । सद्गुरु की प्रार्थना करते हुए भी वह बहुत अधिक नहीं बोलता । आत्मसुख मिलने के साधन के विषय में भी वह एकाध शब्द के द्वारा ही प्रश्न करता है ।

शिष्य के इस तरह ये नौ लक्षण हैं । ये नौ खण्डवाली पृथ्वी के भूषण हैं । नारायण ने कृपा करके इन्हें भक्तों को दिया है । इन नवरत्नों की सुन्दर माला जो सद्गुरु के कंठ में डालेगा, वह तत्काल ही मोक्ष के माधुर्य को पायेगा । इन नौ रत्नों के तगमे जिस शिष्य के हृदय पर शोभित होंगे, वही सद्गुरु का निश्चित विश्वासपात्र होगा । इन नौ रत्नों का अभिनव गुच्छ सद्गुरु की भेंट के लिये जो भी लायेगा वह आत्म-परमात्म राज्य के मुकुट पर महामणि बनकर चमकने लगेगा । अतः सभी कल्याण कामियों को चाहिये कि सत्य का, संयम का मौन का, सत्शास्त्र और श्रेष्ठ व्रतों का अवलंबन लेकर परममंगल कर लें । आत्म स्वराज्य के सुख को पा लें । [*श्री एकनाथी भागवत से*]

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिये विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी । अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें ।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी ।

एकादशी माहात्म्य

[अपरा एकादशी : १९ मई २००१]

युधिष्ठिर ने पूछा : ''जनार्दन ! ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है ? मैं उसका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ । उसे बताने की कृपा कीजिये ।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''राजन् ! आपने सम्पूर्ण लोकों के हित के लिये बहुत उत्तम बात पूछी है । राजेन्द्र ! ज्येष्ठ (गुजरात-महाराष्ट्र के मुताबिक वैशाख) मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम 'अपरा' है । यह बहुत पुण्य प्रदान करनेवाली और बड़े-बड़े पातकों का नाश करनेवाली है । ब्रह्महत्या से दबा हुआ, गोत्र की हत्या करनेवाला, गर्भस्थ बालक को मारनेवाला, परनिन्दक तथा परस्त्रीलम्पट पुरुष भी अपरा एकादशी के सेवन से निश्चय ही पापरहित हो जाता है । जो झूठी गवाही देता है, माप-तौल में धोखा देता है, बिना जाने ही नक्षत्रों की गणना करता है और कूटनीति से आयुर्वेद का ज्ञाता बनकर वैद्य का काम करता है... ये सब नरक में निवास करनेवाले प्राणी हैं । परन्तु अपरा एकादशी के सेवन से ये भी पापरहित हो जाते हैं । यदि कोई क्षत्रिय अपने क्षात्रधर्म का परित्याग करके युद्ध से भागता है, तो वह क्षत्रियोचित धर्म से भ्रष्ट होने के कारण घोर नरक में पड़ता है । जो शिष्य विद्या प्राप्त करके स्वयं ही गुरुनिन्दा करता है, वह भी महापातकों से युक्त होकर भयंकर नरक में गिरता है । किन्तु अपरा

एकादशी के सेवन से ऐसे मनुष्य भी सद्गति को प्राप्त होते हैं।

माघ में जब सूर्य मकर राशि पर स्थित हो, उस समय प्रयाग में स्नान करनेवाले मनुष्यों को जो पुण्य होता है, काशी में शिवरात्रि का व्रत करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, गया में पिण्डदान करके पितरों को तृप्ति प्रदान करनेवाला पुरुष जिस पुण्य का भागी होता है, बृहस्पति के सिंहराशि पर स्थित होने पर गोदावरी में स्नान करनेवाला मानव जिस फल को प्राप्त करता है, बदरिकाश्रम की यात्रा के समय भगवान केदार के दर्शन से तथा बदरीतीर्थ के सेवन से जो पुण्य-फल उपलब्ध होता है तथा सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में दक्षिणा सहित यज्ञ करके हाथी, घोड़ा और सुवर्ण दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, अपरा एकादशी के सेवन से भी मनुष्य वैसे ही फल प्राप्त करता है। 'अपरा' को उपवास करके भगवान वामन की पूजा करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो श्रीविष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है। इसको पढ़ने और सुनने से सहस्र गोदान का फल मिलता है।

(एकादशी के दिन अशुद्ध द्रव्य से बने पेय न पियें। आइसक्रीम व तली हुई चीजें न खायें। फल, फल का रस अथवा थोड़े दूध या जल पर रहें। मौन, जप, शास्त्र-पठन, कीर्तन, रात्रि-जागरण एकादशी व्रत में विशेष लाभ पहुँचाते हैं।) [*'पद्म पुराण'* से]

** अमावस्या, अष्टमी, पूर्णिमा, चतुर्दशी, व्रत-उपवास के दिन, किसी श्राद्ध आदि पर्वकाल की तिथि में स्त्रीगमन करना निषिद्ध है।* – विष्णु स्मृति

** दिन में सोने से आयु क्षीण होती है और मानसिक शक्ति का ह्रास होता है। संध्याकाल में स्त्री गमन करने से मनुष्य पशु वृत्ति की ओर उन्मुख होता है और इससे यदि पुत्र उत्पन्न हुआ, तो वह असुर होता है। ऊषाकाल में आहार और स्त्रीगमन मृत्यु के मुख में पहुँचा देता है।*

** कुल का उद्धार उसके सदस्यों के सदाचारी और विवेकी होने से होता है, धन या साधनों की समृद्धि से नहीं।* – ऋषि अंगिरा

ग्रीष्म ऋतुचर्या

अप्रैल-मई और जून के पहले कुछ दिनों का समावेश ग्रीष्म ऋतु में होता है। ग्रीष्म ऋतु आदान काल में होती है। इन दिनों में काल के स्वभाव के अनुसार सूर्य की किरणें अत्यंत उष्ण होती हैं। इनके संपर्क से हवा रुक्ष बन जाती है और यह रुक्ष-उष्ण हवा अन्न द्रव्यों को सुखाकर शुष्क बना देती हैं। स्थिर चर सृष्टि में से आर्द्रता, सिनग्धता का शोषण करती हैं। इस अत्यंत रुक्ष बने हुए वायु के कारण पैदा होनेवाले अन्न पदार्थों में कटु-तिक्त कषाय रसों का प्राबल्य बढ़ता है और इनके सेवन से मनुष्यों में दुर्बलता आने लगती हैं। शरीर में वातदोष का संचय होने लगता है। **अगर इन दिनों में वातप्रकोपक आहार-विहार करते रहें तो यही संचित वात ग्रीष्म के बाद आनेवाली वर्षा ऋतु में अत्यंत प्रकुपित होकर विविध व्याधियों को आमंत्रण देता है।** आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र के अनुसार **'चय एव जयेत् दोषं।'** अर्थात् दोष जब शरीर में संचित होने लगते हैं तभी उनका शमन करना चाहिये। अतः इस ऋतु में मधुर, तरल, सुपाच्य, हलके, जलीय, ताजे, स्निग्ध, शीत गुणयुक्त पदार्थों का सेवन करना चाहिये।

आहार : ग्रीष्म ऋतु में साठी के पुराने चावल, गेहूँ, दूध, मक्खन, गौघृत के सेवन से शरीर में शीतलता, स्फूर्ति तथा शक्ति आती है। सब्जियों में लौकी, गिल्की, परवल, केले के फूल, चौलाई, हरी ककड़ी, हरा धनिया, पोदीना और फलों में तरबूज, नारियल, मौसमी, आम, सेव, अनार,

अंगूर का सेवन लाभदायी हैं।

इस ऋतु में तीखे, खट्टे, कसैले एवं कड़वे रसवाले पदार्थ नहीं खाने चाहिये। नमकीन, तेज मिर्च-मसालेदार तथा तले हुए पदार्थ, दही, अमचूर, आचार, इमली आदि न खायें। गरमी से बचने के लिये बाजारू शीतपेय (कोल्ड-ड्रिंक्स), आइसक्रीम, आइसफ्रूट, डिब्बों में बंद फ्रूट-जूस का सेवन कदापि न करें। इनके सेवन से शरीर में कुछ समय के लिये शीतलता का आभास होता है परन्तु ये पदार्थ पित्तवर्धक होने के कारण आंतरिक गर्मी को बढ़ाते हैं। इनकी जगह कच्चे आम को भूनकर बनाया गया मीठा पना, पानी में नींबू का रस तथा मिश्री मिलाकर बनाया गया शरबत, हरे नारियल का पानी, फलों का ताजा रस, दूध और चावल की खीर, गुलकंद आदि शीत तथा जलीय पदार्थों का सेवन करें। इससे सूर्य की अत्यंत उष्ण किरणों के दुष्प्रभाव से शरीर का रक्षण किया जा सकता है।

विहार : प्रातः सूर्योदय से पहले ही उठ जायें। शीतल जलाशय के किनारे अथवा बगीचों में घूमें। शीतल पवन जहाँ आता हो वहाँ सोयें। शरीर पर चंदन, कपूर का लेप करें। रात को भोजने के बाद थोड़ासा टहलकर बाद में खुली छत पर, शुभ्र शैय्या पर शयन करें। इस समय यदि चम्पा, चमेली, गुलाब आदि के फूल धारण किये जायें तो दिनभर की गर्मी इनकी शीतलता के कारण शांत हो जाती हैं। गर्मी के दिनों में सोते समय ठण्डे किये हुए दूध का अथवा ठण्डाई का सेवन भी हितकारी होता हैं।

ग्रीष्म ऋतु में आदान काल के कारण शरीर की शक्ति का ह्रास होता रहता है। वातकर आहार-विहार के कारण शरीर में वायु की भी वृद्धि होने लगती हैं और दिन बड़े तथा रात छोटी होती हैं। अतः दोपहर के समय थोड़ा-सा विश्राम करना चाहिये। इससे इस ऋतु में धूप के कारण होनेवाले रोग भी उत्पन्न नहीं हो पाते हैं।

रात को देर तक जागना और सुबह तक सोये रहना त्याग दें। अधिक व्यायाम, अधिक परिश्रम, धूप में टहलना, उपवास, भूख-प्यास सहना तथा स्त्री-सहवास वर्जित हैं।

विशेष : ग्रीष्म ऋतु में हरड़ चूर्ण तथा गुड़ समान मात्रा में मिलाकर सेवन करने से वात तथा पित्त का प्रकोप नहीं होता है। इस ऋतु में प्रातः 'पानी प्रयोग' भी अवश्य करना चाहिये जिसमें सुबह-सुबह खाली पेट अगले दिन का रखा हुआ सवा लीटर पानी पीना होता है। दोपहर को घर से बाहर निकलते समय भी एक गिलास पानी पीकर ही निकलना चाहिये। इससे 'लू' लगने की संभावना नहीं रहेगी। बाहर के गर्मी भरे वातावरण में से आकर तुरन्त पानी नहीं पीना चाहिये। ठण्डी कार से अथवा ठण्डे कमरे से तुरन्त गर्मी में नहीं जाना चाहिये तथा गर्मी से तुरंत ठंडे में नहीं आना चाहिये। जहाँ शुष्क हवा है वहीं ये नियम लागू होते हैं। मुंबई, सूरत आदि नमी वाले स्थानों में लू का भय नहीं है।

इस ऋतु में मुलतानी मिट्टी से स्नान करना वरदान स्वरूप है। मुलतानी मिट्टी के विषय में 'ऋषि प्रसाद' में लिखने से उसके दाम बढ़ने की संभावना है। इसलिये पूज्य बापू ने समिति को मुलतानी मिट्टी की व्यवस्था करने की आज्ञा दी है। दिल्ली में आयोजित विद्यार्थी शिविर में मुलतानी मिट्टी के पैकेट निःशुल्क बाँटे गये थे। कहीं-कहीं पर तो मुलतानी मिट्टी पर भी मिलावट होने लगी है इसलिये यह काम समिति को सौंपा गया है ताकि शुद्ध और सस्ती मुलतानी मिट्टी उपलब्ध हो सके। इसके स्नान से जो लाभ होता है साबुन से उसका १% भी नहीं होता। जापानी लोग इसका खूब लाभ उठाते हैं। गर्मी को खींचनेवाली, पित्तदोष का शमन करनेवाली, रोमकूपों को खोलनेवाली मुलतानी मिट्टी से स्नान करे और इसके लाभों का अनुभव करें। पूज्य बापू की आज्ञा है कि समितियाँ लोगों तक यह मिट्टी पहुँचाने की सेवा में लग जायें।

*

अमृतफल बिल्व

बेल या बिल्व का अर्थ है : **रोगान् बिलति भिनत्ति इति बिल्वः।** जो रोगों का नाश करे वह बिल्व। बेल के विधिवत् सेवन से शरीर स्वस्थ और सुडौल बनता है। बेल की जड़, उसकी शाखाएँ,

पत्ते, छाल और फल, सब-की-सब औषधियाँ हैं। बेल में हृदय को ताकत और दिमाग को ताजगी देने के साथ सात्त्विक शांति प्रदान करने का भी श्रेष्ठ गुण है। यह स्निग्ध, मुलायम और उष्ण होता है। इसके गूदे, पत्तों तथा बीजों में उड़नशील तेल पाया जाता है, जो औषधीय गुणों से भरपूर होता है। कच्चे और पके बेलफल के गुण तथा उससे होनेवाले लाभ अलग-अलग प्रकार के होते हैं।

कच्चा बेलफल भूख तथा पाचनशक्ति बढ़ानेवाला, कृमियों का नाश करनेवाला है। यह मल के साथ बहनेवाले जलयुक्त भाग का शोषण करनेवाला होने के कारण अतिसार रोग में अत्यंत हितकर है। इसके नियमित सेवन से कॉलरा (हैजा) से रक्षण होता है।

पका हुआ फल मधुर, कसैला, पचने में भारी तथा मृदु विरेचक है। इसके सेवन से दस्त साफ होते हैं।

※ औषध-प्रयोग ※

(१) उल्टी : बेलफल के छिलके का ३० से ५० मिली. काढ़ा शहद मिलाकर पीने से त्रिदोषजन्य उल्टी में आराम मिलता है।

गर्भवती स्त्रियों को उल्टी व अतिसार होने पर कच्चे बेलफल के २० से ५० मि.ली. काढ़े में सत्तू का आटा मिलाकर देने से भी राहत मिलती है।

बार-बार उल्टियाँ होने पर अथवा किसी भी चिकित्सा से राहत न मिलने पर बेलफल के गूदे का पाँच ग्राम चूर्ण चावल की धोवन के साथ लेने से आराम मिलता है।

(२) संग्रहणी : इस व्याधि में पाचनशक्ति अत्यंत कमजोर हो जाती है। बार-बार दुर्गंधयुक्त चिकने दस्त होते हैं। इसके लिये दो बेलफल का गूदा ४०० मि.ली. पानी में उबालकर छान लें। फिर ठंडा कर उसमें २० ग्राम शहद मिलाकर सेवन करें।

पुरानी जीर्ण संग्रहणी में : बेल का १०० ग्राम गूदा प्रतिदिन २५० ग्राम दूध में मसलकर पियें।

(३) पेचिश (Dysentery) : बेलफल आँतों को ताकत देता है। एक बेल के गूदे से बीज निकालकर सुबह-शाम सेवन करने से पेट में मरोड़ नहीं आती है।

(४) जलन : २०० मि.ली. पानी में २५ ग्राम बेल का गूदा, २५ ग्राम मिश्री मिलाकर शरबत पीने से छाती, पेट, आँख या पाँव की जलन में राहत मिलती है।

(५) मुँह के छाले : एक बेल का गूदा सौ ग्राम पानी में उबालें। ठंडा हो जाने पर उस पानी से कुल्ले करें। छाले छू हो जायेंगे।

(६) प्रमेह (Diabetes) : बेल एवं वकुल की छाल का २ ग्राम चूर्ण दूध के साथ लें।

(७) दिमागी थकावट : एक पके बेल का गूदा रात्रि के समय पानी में मिलाकर मिट्टी के बर्तन में रखें। सुबह छानकर इसमें मिश्री मिला लें और प्रतिदिन पियें। इससे दिमाग तरोताजा हो जाता है।

(८) कान का दर्द, बहरापन : बेलफल को गोमूत्र में पीसकर उसे १०० मि.ली. दूध, ३०० मि.ली. पानी तथा १०० मि.ली. तिल के तेल में मिलाकर धीमी आँच पर उबालें। यह बिल्वसिद्ध तेल प्रतिदिन ४-४ बूँद कान में डालने से कान के दर्द तथा बहरेपन में लाभ होता है।

※ पके हुए बेलफल का गूदा निकालकर उसे खूब सुखा लें। फिर पीसकर चूर्ण बनायें। इस चूर्ण को छः महीने तक ही प्रयोग में लाया जा सकता है। इसमें पाचकतत्त्व पूर्ण रूप से समाविष्ट होता है। आवश्यकता पड़ने पर २ से ५ ग्राम चूर्ण पानी में मिलाकर सेवन कर सकते हैं।

[संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा संचालित धन्वन्तरि आरोग्य केन्द्र, अमदावाद।]

मल, मूत्र, वमन, अधोवायु, छींक, हिचकी, जँभाई, भूख, प्यास, आँसू, निद्रा एवं श्वास इन्हें रोकने वाला भयानक रोगों का कष्ट भोगता है। इन शारीरिक वेगों को स्वास्थ्य चाहक कभी न रोके।

ग्रीष्म ऋतु में पतले, शीतल, सुपाच्य भोजन करना हितकारी है। मद्यपान, स्त्री प्रसंग, कड़वे, चटपटे, नमकीन पदार्थों के सेवन से बचना चाहिये। **– चरक संहिता**

संत च्यवनप्राश

च्यवनप्राश विशिष्ट आयुर्वेदीय उत्तम औषध एवं पौष्टिक खाद्य है, जिसका प्रमुख घटक आँवला है। जठराग्निवर्धक और बलवर्धक च्यवनप्राश का सेवन अवश्य करना चाहिये। **किसी-किसी की धारणा है कि च्यवनप्राश शीत ऋतु में ही सेवन करना चाहिये, परंतु यह सर्वथा भ्रान्त मान्यता है। इसका सेवन सब ऋतुओं में किया जा सकता है। ग्रीष्म ऋतु में भी वह गरमी नहीं करता, क्योंकि इसका प्रधान द्रव्य आँवला है, जो शीतवीर्य होने से पित्तशामक है।**

च्यवनप्राश केवल बीमारों की ही दवा नहीं है, बल्कि स्वस्थ मनुष्यों के लिये उत्तम खाद्य भी है।

२४ वनस्पतियों में उसे उबाला जाता है और ३२ पौष्टिक चीजें (शहद, घी, इलायची आदि) डालकर कुल ५६ वस्तुओं के मेल से असली च्यवनप्राश बनाया जाता है।

आश्रम द्वारा 'न नफा न नुकसान' इस सेवाभाव से च्यवनप्राश में इन सब वस्तुओं के अतिरिक्त हिमालय से लायी गयी वज्रबला (सप्तधातुवर्द्धनी वनस्पति), सप्तधातुवर्धक उपसंजीवनी का रस भी डालकर च्यवनप्राश बनाया गया है। विधिवत् इन वस्तुओं से युक्त शुद्ध एवं पौष्टिक यह च्यवनप्राश जरूर खाना चाहिये।

लाभ : बालक, वृद्ध, क्षत-क्षीण, स्त्री-संभोग से क्षीण, शोषरोगी, हृदय के रोगी और क्षीण स्वरवाले को इसके सेवन से काफी लाभ होता है। इसके सेवन से खाँसी, श्वास, प्यास, वातरक्त, छाती का जकड़ना, वातरोग, पित्तरोग, शुक्रदोष और मूत्ररोग आदि नष्ट हो जाते हैं। यह स्मरणशक्ति और बुद्धिवर्धक तथा कान्ति, वर्ण और प्रसन्नता देनेवाला है तथा इसके सेवन से बुढ़ापा देरी से आता है। यह फेफड़े को मजबूत करता है, दिल को ताकत देता है, पुरानी खाँसी और दमा में बहुत फायदा करता है तथा दस्त साफ लाता है। अम्लपित्त में यह बड़ा फायदेमंद है। वीर्यविकार और स्वप्नदोष नष्ट करता है।

इसके अतिरिक्त यह राजयक्ष्मा (टी. बी.) और हृदयरोगनाशक तथा भूख बढ़ानेवाला है। संक्षिप्त में कहा जाये तो पूरे शरीर की कार्यविधि को सुधार देनेवाला है।

मात्रा : दूध या नाश्ते के साथ १५ से २० ग्राम सुबह-शाम। बच्चों के लिये ५ से १० ग्राम की मात्रा।

अर्द्धशा० पत्र सं०-ओ/581/सी०एम०-1/2001

सचिवालय एनेक्सी
लखनऊ

राजनाथ सिंह

मुख्य मंत्री
उत्तर प्रदेश

दिनांक :09 अप्रैल.२००१

संत प्रवर बापूजी,

आपने मेरे कामकाज पर दृष्टिपात किया, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। समाज एवं संस्कृति की रक्षा के लिये आपने मुझे प्रोत्साहन देकर एक नया बल प्रदान किया है। महान् भारत के निर्माण हेतु आपके मन में जो भावनायें हैं, उनसे मैं आपके प्रवचनों के माध्यम से परिचित होता रहता हूँ। ईश्वर से प्रार्थना है कि जिस तरह भारत भूमि को गंगा का अजस्र प्रवाह उसे विश्व के अन्य राष्ट्रों से अलग स्थान प्रदान करता है, उसी तरह भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये संतों के अवतरण की अटूट धारा इस भूमि में सदैव प्रवाहित होती रहे।

आपके दर्शन की उत्कट लालसा के साथ आपके श्रीचरणों में विनम्र प्रणाम।

आपका

(राजनाथ सिंह)

शीघ्र तत्वज्ञान प्राप्ति का उपाय है- सद्गुरु की प्राप्ति। सद्गुरु मिल जाने से उसे शीघ्र ही सिद्धि हो जाती है। सद्गुरु जो नियम बतावें उन्हीं का पालन करे।

- श्री उड़िया बाबा

सत्संग-श्रवण से रोगमुक्ति

मेरे ११ साल के लड़के चि. वैष्णव कुमार के चेहरे, पैर और पीठ पर सफेद दाग हो गये थे जिनमें खुजली भी होती थी। दैवयोग से 'सोनी चैनल' पर पूज्यश्री ने तुलसी के पत्तों के गुणधर्म और शरीरोपयोगी उपचार बताये। पूज्यश्री के उपदेश के अनुसार उनके औषधरूप प्रसाद का हमने नित्यप्रति सेवन करवाया और आश्चर्य की बात यह हुई कि आठ दिन में ही सफेद दाग पूर्णतः नष्ट हो गये ! अगर 'सोनी चैनल' पर पूज्यश्री के दर्शन करके उनके सत्संग से हमें इतना लाभ हुआ तो प्रत्यक्ष पूज्य बापू के दर्शन हो जायें तो हमारा जन्म सार्थक हो जायेगा। ऐसा शुभ अवसर कब आयेगा ?

पूज्य गुरुदेव के सत्संग में आध्यात्मिक नैतिक, भौतिक, व्यावहारिक सभी प्रकार की जानकारियाँ मिलती हैं।

पूज्य गुरुदेव सारे विश्व में आदरणीय हैं, संपूर्ण मानव जाति में उच्च स्थान पर हैं। हमें जब से 'ऋषि प्रसाद' का अंक प्राप्त हुआ है तब से हमारा पूरा परिवार नये चैतन्य में, भक्तिभाव में सराबोर हो रहा है।

हम सभी पूज्य गुरुदेव के ऋणी हैं। गुरुदेव से प्रार्थना है कि उनकी कृपा हम पर बरसती रहे...

- ज. शि. राऊत (पत्रकार) पिंजर, जि. अकोला।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १०३वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया मई २००१ के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

अमदावाद (गुज.) : २४ से २६ मार्च। चेटीचंड महोत्सव एवं ध्यानयोग साधना शिविर संपन्न हुआ। तीव्र आध्यात्मिक स्पंदनों से युक्त आश्रम के दिव्य वातावरण में ध्यान के गहरे प्रयोग, योगनिष्ठ पूज्य बापूजी द्वारा कराये गये। २६ मार्च को चेटीचंड महोत्सव हर्षोल्लास के साथ मनाया गया।

२७ से २९ मार्च : त्रि-दिवसीय 'विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर' में हजारों विद्यार्थी शामिल हुए। राष्ट्र के युवाधन को उच्च आदर्शों से सुसंस्कारित किया पूज्य बापू ने।

युवाओं के प्रेरणास्रोत पूज्य बापूजी, नारायण साँई व श्री सुरेशानंदजी ने भी विद्यार्थियों को प्रयोग सिखाये एवं मार्गदर्शन प्रदान किये। छात्र-छात्राओं के बौद्धिक विकास के लिये अनेक प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ। विजेताओं को पुरस्कार व प्रमाण पत्र प्रदान किये गये। पूज्यश्री के सत्संग प्रवचन पर आधारित नई किताब यौवन-सुरक्षा भाग-२ का विमोचन हुआ।

इंदौर : ३१ मार्च से २ अप्रैल। बिलावली तालाब पर बना विशाल सत्संग पांडाल शिविर के दौरान प्राचीन ऋषिप्रणीत गुरुकुल की खबरें दे रहा था। यहाँ बच्चों ने पूज्य बापूजी में देखा माता सम वात्सल्य, पिता सम अनुशासन और गुरु के समान मार्गदर्शन। वेदान्त के गूढ़ रहस्यों को चुटकियों में समझा देनेवाले पूज्य बापू ने विद्यार्थियों की एक बड़ी समस्या याददाश्त की कमी का यौगिक निदान बताया। ईश्वर कैसे प्रसन्न होते हैं इस विषय का अत्यंत सरल व रोचक वर्णन पूज्यपाद बापू ने किया। वह ऑडियो-वीडियो कैसेट सुनने-देखने योग्य है। यह कैसेट अपने जीवन को ओजस्वी-तेजस्वी बनाने के इच्छुक प्रत्येक विद्यार्थी को देखना-सुनना चाहिये और उसमें बताये निर्देशों को आचरण में लाने का प्रयत्न करना चाहिये। ध्यानयोग शिविर की पूर्णाहुति के बाद बादल छाये, छींटे पड़े तथा शुष्क वातावरण ठण्डा खुशनुमा बना।

दिल्ली (कड़कड़डूमा, जमुनापार) : ५ से ७ अप्रैल। महानगर में आयोजित तीन दिवसीय 'विद्यार्थी उत्थान तेजस्वी तालीम शिविर' में ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापूजी ने

विद्यार्थियों में बाल्यकाल से ही संयम, सदाचार के गुण विकसित करने की प्रेरणा दी और आवेग, आवेश व विफलताओं की ओर घसीटनेवाले विचारों पर, रसों पर नियंत्रण पाकर बौद्धिक विकास करानेवाले ध्यान के प्रयोग एवं तीसरा नेत्र (ज्ञान नेत्र) सुविकसित करने के ऋषि-मुनि अनुभूत प्रयोग बच्चों को कराये। अगर बालक प्रतिदिन २-४ मिनट ये प्रयोग करते रहेंगे तो बौद्धिकशक्ति, स्मृतिशक्ति, निर्णयशक्ति, नियामकशक्ति का विकास होगा। जिन केन्द्रों से इन शक्तियों का सीधा संबंध है उन केन्द्रों पर असर करनेवाले आसन, मंत्र का प्रयोग पूज्य बापूजी ने करवाया। ये प्रयोग २-४ मिनट रोज करते रहे तो विद्यार्थियों का जीवन सुविकसित होगा इसमें किंचित्मात्र भी संदेह नहीं।

८ अप्रैल को पूनमदर्शनोत्सव संपन्न हुआ। देश के विभिन्न भागों से आये पूनम व्रतधारी भक्तों ने पूज्यपाद सद्गुरुदेव के दर्शन-सत्संग प्राप्त कर व्रत-पारायण किया। पूज्यश्री ने अपने हजारों साधक-साधिकाओं को साबुन का प्रयोग न कर मुलतानी मिट्टी से स्नान करने की सलाह दी। पूज्य बापूजी ने बताया कि : ''मुलतानी मिट्टी से स्नान करने पर जो लाभ होता है उसका १% भी लाभ साबुन से नहीं होता। साबुन की अपेक्षा मुलतानी मिट्टी में नींबू, बेसन, दही अथवा छाछ मिला हुआ घोल शरीर में बीमारी उत्पन्न करनेवाले तमाम हानिकारक द्रव्यों को सोख लेता है। अनेक रासायनिक द्रव्यों से निर्मित साबुन त्वचा व रोमकूपों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

अतः साबुन का प्रयोग छोड़कर मुलतानी मिट्टी से स्नान करें और प्रत्यक्ष लाभ का अनुभव करें। इस प्राकृतिक उपहार का उपयोग करके तो देखिये फिर आप स्वयं कह उठेंगे- वाह ! क्या ताजगी है !''

पूज्यश्री की आज्ञा से शिविरार्थियों को मुलतानी मिट्टी के पैकेट निःशुल्क बाँटे गये।

८ अप्रैल को ही पूज्यश्री के करकमलों से ऋषि प्रसाद स्वर्णपदक प्रतियोगिता के विजेताओं को स्वर्णपदक एवं पुरस्कार वितरित किये गये। 'ऋषि प्रसाद' की दैवी सेवा में लगे सेवाधारियों का सम्मान समारंभ देखते ही बनता था।

गुरुवर से उपहार पाने का अब, स्वर्णिम अवसर आया है।
'ऋषि प्रसाद' के सेवाधारियों का, गुरुवर ने भाग्य जगाया है॥
गुरुवर के कर-कमलों को छूकर, स्वर्णपदक इठलाया है।
'ऋषि प्रसाद' के सेवाधारियों का, गुरुवर ने भाग्य जगाया है॥

'ऋषि प्रसाद' की दैवी सेवा में लगे हजारों सेवाधारियों में से लगभग ५०० सेवाधारियों को सम्मानित किया गया जिसमें १४ स्वर्णपदक विजेता थे। पूज्य बापूजी के भक्तों ने पूज्य बापूजी को आज तक जो उपहार अर्पित किये थे वे पवित्र उपहार इन ५०० सेवकों में बाँट दिये गये।

गद्गद् हो गये सेवाधारी। उन्होंने सोचा भी नहीं था कि इस सेवा का इतना सारा स्नेह-सम्मान मिलेगा! ईश्वर और संतों की सेवा परलोक में तो सद्गति देती ही है लेकिन इस लोक का स्नेह-सभारंभ भी अद्भुत है। सभी सेवाधारियों को आत्म-संतोष हो रहा था। वह उनके जीवन का सबसे बड़ा दिन, सबसे बड़ी उपलब्धि का दिन था। 'इस अभियान को दूसरे रूप में पूज्य बापू फिर से आरंभ करवायें। १०१वें अंक से ही हम और हमारे दूसरे सेवाधारी भाई नई उमंगें, नया उत्साह लेकर लग जायें और 'ऋषि प्रसाद' घर-घर पहुँचायें।' ऐसी फिर से उनकी माँग है।

१० अप्रैल को कड़कड़डूमा (दिल्ली) के कार्यक्रम का समापन हुआ। १३ अप्रैल को पूज्यश्री हवाई मार्ग से कुल्लु (हि.प्र.) पहुँचे जहाँ वर्षा की रिम-झिम फुहारों के बीच १४ व १५ अप्रैल को लालचन्द प्रार्थी स्टेडियम में सत्संग-प्रवचन सम्पन्न हुआ।

पूज्य बापू के आगामी कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	स्थान	संपर्क फोन
२६ से २९ अप्रैल	जम्मू	गीता-भागवत सत्संग	साइंस कॉलेज हॉस्टल ग्राउण्ड।	(०१९१) ५५३२८६
३० अप्रैल से २ मई	पटियाला	योग-भक्ति-ज्ञान वर्षा	पोलो ग्राउण्ड, पटियाला।	२१५२२३, ३०११६५, ७०१४४९, ७०१४५०.
५ से ७ मई	नोएडा	गीता-भागवत सत्संग एवं पूर्णिमा दर्शन	सेक्टर १८ का मैदान, न्यू अड्डा चौराहा, नोएडा (उ. प्र.)।	४७१२२२२, ४५२१४८९, ४५३१८४७.
६ से ९ मई	सहारनपुर	गीता-भागवत सत्संग प्रथम दो दिन श्री नारायण साँई द्वारा	जेल चुंगी मैदान, देहरादून रोड, सहारनपुर।	६६४१४७, ६४४१४१.
१० से १३ मई	यमुनानगर (हरियाणा)	भक्ति-ज्ञान-योग वर्षा प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी द्वारा	पुराना कोर्ट ग्राउण्ड, जगाधरी, यमुनानगर (हरियाणा).	(०१७३२) ३४१७६, २२६०४ ९८१२० ३०७५९.

पूर्णिमा दर्शन : ७ मई २००९ को नोएडा (उ. प्र.) में।
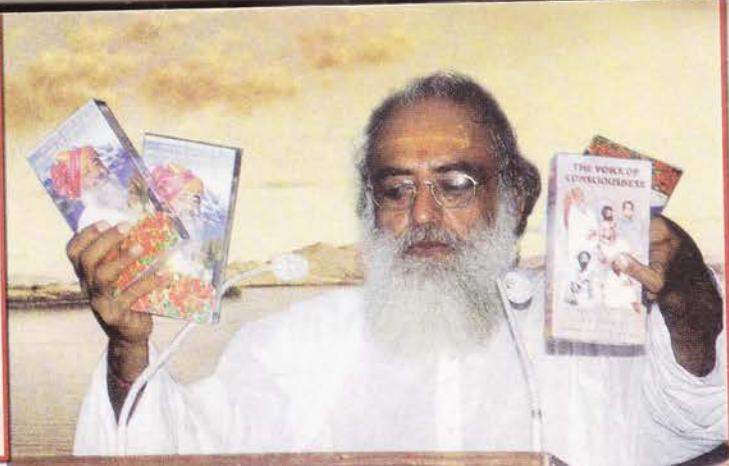
पूज्यश्री के करकमलों द्वारा अंग्रेजी में 'चेतना के स्वर' (The Voice of conciousness) वीडिओ कैसेट का विमोचन।

साँई के सत्संग में सराबोर 'टाईम्स ऑफ इन्डिया' एवं 'नवभारत टाईम्स' की चेयरमैन संतसेवी आत्मा श्रीमती इन्दु जैन।

सत्संग सुधा का एकाग्रता से पान करते हुए दिल्ली के भक्त।

'हरि ॐ' कीर्तन में सराबोर दिल्ली की साधिका बहनें।

ध्यान की गहराई में मधुर शान्ति का आस्वादन करते हुए भारत के भावी कर्णधार। (दिल्ली)

अपने सद्गुरु के दिव्य जन्मोत्सव पर खुशी का इजहार करते हुए सूरत की गलियों में निकल पड़े बापू के प्यारे।

पूज्य बापू की छत्रछाया में पुष्ट होता हुआ भारत का मेरुदंड।

अपने सपूतों को अपनी आँखों से उन्नति के पथ पर देखकर प्रसन्न होते हुए इन्दौर के अभिभावकगण।

अपने सद्गुरुदेव का जन्मोत्सव–उल्लास हृदय में न छुपा पाये... और हैदराबाद की
गलियों को हरि ॐ की धुन से गुंजायमान करने निकल पड़े बापू के भक्त।

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED. NO. GAMC/1132/2001. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2001 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2001 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2001 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.